चींटी

[कीड़े-मकोड़ों की दुनिया का मनोरंजक विवरण]

लेखक

श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा

प्रकाशक

भीष्म एराड ब्रादर्स

पटकापुर, कानपुर

प्रथम बार] जनवरी १९४५ [मूल्य १)

प्रकाशक—

भीष्म एण्ड ब्रादर्स

पटकापुर, कानपुर

क्यों ?

उन्नाव जेल मे चींटियों का निरीक्षण करने का मौका मिला। उनका निरन्तर परिश्रम देखकर मधु-मक्खियों की तरह उन पर भी कुछ लिखने की इच्छा हुई। जीव-जन्तुओं के सम्बन्ध मे मेरी अभिरुचि जानते हुए मेरे पुत्र अर्जुन अरोडा ने दैवयोग से "जूलियन हक्सले" की लिखी हुई "चींटी" नामक पुस्तक भेज दी। उसको पढ़कर ऐसा मज़ा आया कि प्रस्तुत पुस्तक लिख डाली गई। यदि मनोरंजन और ज्ञान-वृद्धि के अतिरिक्त किसी पाठक को चींटियो के आदर्श परिश्रम से पारस्परिक सहयोग की तनिक भी शिक्षा मिलेगी तो अपने तीन-चार मास के परिश्रम को सफल समझूँगा।

—लेखक

मुद्रक—

श्यामलाल

प्रेम प्रेस,

कटरा, इलाहाबाद

परिश्रम की मूर्ति चींटी

पर

लिखी हुई यह पुस्तिका अपने परम परिश्रमी पुत्र

चि० तिलक अरोड़ा

को

स्नेह-भेंट

ना० प्र० अरोड़ा

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

प्रारम्भिक

सामाजिक कीड़े साधारणतया, और चींटियाँ विशेष रूप से पक्षियों और मनुष्यों के साथ-साथ जीवन की पुष्प-वाटिका में अत्यन्त मनोहर फूलों का काम देते हैं। यदि कीड़ों के मौलिक संगठन में आरंभ ही से कुछ ऐसे प्रतिबन्ध न लगे होते कि उनका आकार शक्ति-युक्त होकर एक सीमा से आगे नहीं बढ़ सकता तो वे बढ़ कर ऐसे जीव हो जाते कि अन्य रीढ़ वाले जीवधारियों की पृथ्वी-विजय को रोक देते और मनुष्य-उन्नति में सदा के लिए बाधक हो जाते।

मनुष्य समाज के साथ चींटियों, मधु-मक्खियों तथा दीमकों के सामाजिक संगठन की अनेक तुलनाएँ की गई हैं, अनेक सिद्धान्त उपस्थित किये गये हैं और बहुत से नैतिक उपदेशों की ओर संकेत किया गया है। काल्पनिक व्यवस्थाओं को प्रोत्साहित किया गया है और इन छोटे-छोटे जीवों की उपमा देकर मनुष्यों को अपनी राज्य-प्रणाली उन्हीं के आदर्शों पर बनाने को कहा गया है, किन्तु आरम्भ ही से यह कह देना अनुचित न होगा कि सामाजिक कीड़े-मकोड़ों और सामाजिक मनुष्यों में कुछ अन्तर और भेद है। पहली बात तो यह है कि अमानव से मानव स्तन-

पायी की क्रम वृद्धि सिर्फ एक बार हुई है लेकिन असामाजिक कीडों से सामाजिक कीडों की अवस्था मे पहुँचना कई बार भिन्न-भिन्न अवसरो पर हुआ है।

सामाजिक स्वभाव के तीन मुख्य भेद होते हैं। सब से निम्न कोटि के जीवों मे एक प्रकार का पारिवारिक जीवन होता है उसमे माता या माता-पिता दोनो ही अपने बच्चों के साथ रहते और उनकी क्रम-वृद्धि मे सहायक होते है। इसे उप-सामाजिक (Sub Social) या पारिवारिक कोटि कहा जा सकता है। दूसरी कोटि वास्तविक सामाजिक या औपनिवेशिक है, जिसके अन्तर्गत बच्चे पूर्ण रूप से बड़े होकर अपने माता-पिता के साथ रहते है और उनसे सहयोग करके घर या घोंसले बनाते है और आने वाली सतानो की देख-भाल करते है। सबसे उच्च कोटि जाति-समाज की है जिसमे कुछ बच्चो को परिवर्तित करके "नपुसक" बना दिया जाता है, जिनमे कोई लिग भेद नहीं रहता और जो उपजाऊ जाति के कधो से उपनिवेश के कर्तव्यों का सारा बोझ उतार लेते है तथा उन्है केवल जनन-कार्य के लिए छोड़ देते है।

प्राणिशास्त्र-वैज्ञानिक मिस्टर ह्वीलर का कथन है कि बर्रों ने पूर्ण सामाजिक जीवन प्राप्त कर लिया है। मधु मक्खियों ने इनसे कम और मधु मक्खियों से भी कम चींटियों ने।' यदि यह मान भी ले कि चींटियाँ—जिनके सभी सदस्य सामाजिक होते है—बर्रो की विशेषता प्राप्त आकृति की एक शाखा के रूप मे प्रकट हुई हैं तो कम से कम इतना तो निश्चित है कि मधु मक्खियों और बर्रों ने अपनी अनेकाशों मे मिलती-जुलती समाज एक दूसरे से बिलकुल स्वतन्त्र रूप मे परिवर्द्धित कर ली है। इसके अलावा इन नन्हे-नन्हे जीवों ने अपने मे एक जाति-भेद की

प्रवृत्ति भी प्राप्त की है। इसी तरह से दीमकों ने भी अपने बीच अलग-अलग सामाजिक जीवन और जाति भेद की वृद्धि कर ली है लेकिन उनका ढग दूसरा है। सामाजिक कीडों और मनुष्यों मे एक और अधिक प्रत्यक्ष भेद है और वह है उनकी जातियों की सख्या के सम्बन्ध मे। मनुष्य मात्र की तो केवल एक जाति है और अगर सभी साँचों की बारीक जाँच की जाय तो अधिक से अधिक पाँच या छः जातियाँ मिल सकती हैं किन्तु इसके विरुद्ध पूर्ण रूपेण सामाजिक कीड़ों की अनेकानेक जातियों का वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए आठ सौ जाति के बर्रे, पाँच सौ जातियों वाली मधु-मक्खिएँ, पैतीस सौ से ऊपर भेद वाली चींटियाँ और एक हजार किस्म के दीमक होते है। इस प्रकार से कुल मिला कर छः हजार के लगभग विभिन्न जातियाँ होती है और जब हम यह सोचते है कि विशेषज्ञ लोग प्रति वर्ष नये-नये भेद-विभेदों का पता लगा रहे है तो कदाचित यह अतिशयोक्ति न होगी कि (विशेषतयः उष्ण प्रदेशों मे) सामाजिक कीड़ो की दस हजार विभिन्न जातियाँ मौजूद है।

प्राणि-शास्त्र विशारदों ने पता लगाया है कि मनुष्य की उत्पत्ति दस लाख वर्षों से अधिक की नहीं है। किन्तु खोज करने पर मालूम हुआ है कि सामाजिक चींटियों, मधु-मक्खियों, बर्रों और दीमकों को उत्पन्न हुए लगभग तीस लाख वर्ष हुए होंगे। ह्वीलर महाशय कहते है कि "मुझे चींटियों के अध्ययन द्वारा प्रामाणिक रूप से मालूम हुआ है कि चींटियों की रचना मे २५ लाख वर्ष से कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। २५ लाख वर्ष पूर्व ही उनको विविध जातियाँ बनी थीं और वे तभी से वृक्ष-चीलरों की टहल करते हुए अपने घोंसलों मे अतिथि गुबरीलों को पालतीं थीं तथा परजीवी घुनों को अपनी टाँगों में

उसी विशेष स्थान पर चिपकाये रहती थीं जैसा कि वे वर्तमान जातियों मे इस समय भी करती हैं।" बहुत से वर्तमान वंशों का उस समय भी अस्तित्व था। प्राचीन जातियों को आज की जातियों से अलग पहचान लेना असंभव है। इनकी अनेक शाखाएँ लाखों वर्ष पहले पूरी सामाजिक बन गई थीं यह बहुत ही संभव ज्ञात पडता है। प्राचीन विकास के इस अन्तर का एक और भी पहलू है। ऊपर हम लिख चुके है कि पिछले ३० लाख वर्षों मे चींटियों की समाज मे कोई परिवर्तन नहीं-सा हुआ है। किन्तु मनुष्य समाज मे उत्पत्ति से लेकर अब तक महान परिवर्तन हुए हैं और सब से महत्व की बात यह है कि उक्त परिवर्तन समाप्त होकर कोई स्थायी रूप ग्रहण करता आज भी नही दिखाई देता, फिर भी मनुष्य के इतिहास मे यह परिवर्तन प्रगतिशील होकर बढता ही गया है। यही सबसे बडा और मौलिक अन्तर है तथा इसी पर समस्त अंतर अवलम्बित हैं और वह समाजों की रचना का अन्तर तथा दोना प्रकार के जीवधारियो का आचरणयुक्त व्यवहार है। तरुण कीडा पूर्ण रूप मे विकसित होकर सामने आता है, उसमे भिन्न-भिन्न प्रकार की सारी स्वयभू-प्रवृत्तियाँ पूर्ण रूपेण उपस्थित रहती हैं और उसे किसी ऐसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं रहती जो उसे अपने शरीरशास्त्र सम्बन्धी उन कर्तव्यों के पालन करने के योग्य बना दे जिनका करना उनका मुख्य कार्य है। यह बात सत्य है कि उससे सीखने की शक्ति सीमित किन्तु निश्चित रूप से होती है लेकिन इसी मे वह इस योग्य होता है कि अपनी परिस्थितियों के विस्तृत भेदों के अनुकूल अपने स्वाभाविक व्यवहार को बना ले और नितान्त नई समतल भूमियों पर चढने का व्यापार न करे। इसके अतिरिक्त यह बात और भी है कि

किसी कीड़े की समाज के श्रम-विभाजन का विशेष भाग उसके शरीर और मस्तिष्क की रचना के अनुसार पहले ही से निश्चित रहता है। और प्राय: ऐसा होता है कि भिन्न-भिन्न जातियाँ विभिन्न नमूनों की बनी होती हैं। बहुत-सी फौजी चींटियों की लघुतम नपुंसक चींटियाँ नर और मादा चींटियों से शरीर में कई गुना छोटी होती हैं तथा उनकी बाहरी आकृति भी जुदी होती है। फ़सल जमा करने वाली 'फिडोल' जाति की चींटी के सिपाही का सर उसके सारे शरीर से कई गुना बड़ा होता है लेकिन श्रमिक चींटियों का सर साधारण आकार का होता है। श्रमिक मधु-मक्खियों में यही नहीं होता कि उनका सर रानी मधु-मक्खी से बड़ा होता है बल्कि उनकी टाँगें वंश-प्रकृति के द्वारा ऐसे औजारों और यन्त्रों से सुसज्जित रहती हैं जिनके द्वारा वे पराग एकत्रित करके ले जा सकें। कभी-कभी ऐसा होता है कि जैसे-जैसे स्वयंभू प्रवृत्तियां प्रकट होती जाती हैं वैसे ही वैसे श्रमिक विभाजन भी होता जाता है। छोटी श्रमिक मधु-मक्खी बच्चों के लालन-पालन में सहायता करती है किन्तु एक समय आता है जब वह इस काम को छोड़ देती है और पुष्प-आसव तथा पराग जमा करने लगती है।

शताब्दियों से प्रचलित रही है उसका प्रभाव मनुष्य की सर्वतोमुखी योग्यताओं पर नगण्य रूप से ही पडा है। मनुष्य के शरीर पर उसके औजारों की उत्पत्ति नहीं होती है, वह तो उन्हे अगणित प्रकारों से बनाता है। कीडों की अपेक्षा उसकी स्वयभू-प्रवृत्तियाँ बहुत कम स्पष्ट होती है। और धीरे-धीरे स्वभाव अनुभव तथा बौद्धिक अभिप्राय से ऐसी ढक जाती हैं कि उसका सीखा हुआ व्यवहार प्रारम्भिक स्वयभू-प्रवृत्तियों के काय को समूल उखाड़ फेकता है और प्राय: वह व्यवहार बिलकुल नये प्रकार का होता है। बस फिर तो स्वयभू-प्रवृत्तियाँ समाधिस्थ हो जाती हैं और उनसे एक ऐसी नाली-सी बन जाती है जिसमे होकर कार्य करने की प्रवृत्ति आगे के लिए प्रवाहित होती है। सब प्राणियों मे मनुष्य ही ऐसा है जिसने विचारशक्ति और संचित परपरा प्राप्त कर ली है। शीघ्र शिक्षा ग्रहण करने और विचारसारिणी पर अवलबित इस सचित परंपरा से ही मनुष्य समाज ने दूरगामी विकसित होने वाली प्रगति प्राप्त कर ली है। इसके अतिरिक्त इस प्राप्त किये हुए लोच ने मनुष्य को इस योग्य बना दिया है कि वह समस्त भू-मण्डल मे अर्थात् शीत प्रधान ग्रीनलैंड से लेकर उष्ण प्रधान जङ्गलों तक और सहारा से लगा कर हिमालय की चोटी पर्यन्त अद्भुत कार्य कर सके तथा जीवन के विभिन्न प्रकारों एव चलनों से लाभ उठावे। इसे यों भी कह सकते हैं कि कुत्ता से कलके और मछुए से मजूर तक प्राणिशास्त्र की एक जाति के ही भावों के भीतर बना रहे। सामाजिक कीडे-मकोडे भी तरह-तरह के भौगोलिक प्रदेशों और जीवन के मार्गों मे अद्भुत कार्य करते हैं किन्तु उनकी प्रणाली दूसरी ही होती है। उसकी करतूत प्राय: पूर्णरूप से उनकी रचना पर निर्भर करती है। यह रचना चाहे उनके शारीरिक औजारों की या उनकी गुप्त किन्तु वास्तविक

नाडी संगठन की हो जो उनकी स्वयंभू-प्रवृत्ति की जड़ है। परिस्थितियों के बड़े-बडे परिवर्तनों और जीवन के अनेकानेक मार्गो के अनुकूल वे अपने को उसी दशा में बना सकते हैं जब कि उनकी वंश-प्रकृति से प्राप्त शारीरिक रचना मे परिवर्त्तन हो जाये। दूसरी तरह से उसे यों भी कहा जा सकता है कि वे अपने को तब ही परिस्थिति के अनुकूल बना सकते हैं जब उनकी बनावट मे जो कि उन्हे वंश-प्रकृति से प्राप्त होती है आवश्यकतानुसार कमी-वेशी हो जाय। इससे स्पष्ट है कि जीवन के प्रत्येक नये मार्ग के लिए मनुष्य को केवल इस बात की आवश्यकता होती है कि—वह अपना स्वभाव तथा अपनी प्राचीन मौलिक कीटाणु सम्बन्धी परंपरा को बदल दे। लेकिन कीडों के लिए यह जरूरी है कि उनमे नए मार्ग के लिए ऐसी नई जातियॉ उत्पन्न हों जिनका मौलिक कीटाणु परिवर्तित हो गया हो। इस प्रकार से सामाजिक कीड़े संसार मे पृथक जाति के समूह में ही अद्भुत कार्य कर सकते है और उनको प्राणियों की अन्य जातियों से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता, किन्तु मानव प्राणियों की एक निराली जाति है और उसके छोटे-छोटे समुदायों का पृथकत्व क्षणिक है, जो दूर भी किया जा सकता है।

यह भेद विकास के साधारण सिद्धान्त का एक प्रमुख उदाहरण है। किन्तु जहाँ कहीं विशेपता-प्राप्त विवरण-युक्त अनुकूलता की आवश्यकता होती है—चाहे वह शारीरिक रचना की हो या आचरण की; वहीं हमें ऐसे समूह मिलते हैं जिनमें अलग-अलग जातियों की अनगिनत संस्थाएँ हैं। जहाँ कहीं रचना या आचरण या तो सर्वव्यापी होता है या लचीला, वहाँ के समूह मे जातियाँ कम होती हैं। अंततोगत्वा विशेपता प्राप्त और आरम्भिक समूहों की तुलना करने से परिणाम यह निकलता है

कि कम लचीलों मे कम और अधिक लचीलों मे अधिक प्रगति होती है।

विशेषता प्राप्त और प्राथमिक वस्तुओं की विरोधात्मक तुलना करन से यह मालूम हुआ है कि कोमलास्थि वाली Gristly मछलियो की अपेक्षा हड्डी वाली मछलियों की जातियाँ अधिक है, वही हाल प्राचीन स्तनपायियों की अपेक्षा अर्वाचीन स्तनपायियों की जातियो का है। इसी प्रकार Annelid worms की अपेक्षा Insects मे भी अधिक जातियाँ पाई जाती है। यदि हम कम लचीलों की अधिक लचीलों से विरोधात्मक तुलना करे तो हमे मालूम होता है कि स्तनपायियों की अपेक्षा पक्षी अधिक है, Cuttlefish और Octopuses (अष्टपदो) की अपेक्षा घोंघो की संख्या अधिक है, बनमानुषों (apes) की अपेक्षा बन्दर अधिक हैं। अन्त मे मनुष्य, अपने असीम लचीलेपन के कारण जीवित पदार्थ को एक नवीन तल पर पहुँचा देता है, जहाँ पर अत्यन्त विस्तृत अनुकूलता प्राप्त हो सकती है और तो भी सारा समुदाय एक ही जाति में सम्मिलित रह सकता है। अत. अस्तित्व के दो सफल समूहों की—अर्थात् मनुष्यों और कीडों की—विरोधात्मक तुलना करने से हमारा काम चल जाता है। क्योंकि एक मे लगभग पाँच लाख जातियाँ हैं और दूसरे मे केवल एक ही और परिणाम आगे चल कर इस बात का कारण बन जाता है कि कम लचीलों मे प्रगति सीमित हो जाय और अधिक लचीलों मे वह अबाध रूप से चलती रहे।

यह विश्वास करने को प्रत्येक कारण बाध्य करता है कि चींटियों के लिए जितनी भी उन्नति करना सभव था वे पहले ही उसकी चरम सीमा तक पहुँच चुकी है और साथ ही साथ

प्रत्येक कारण यह विश्वास करने के लिए भी पर्याप्त है कि विकास की सीढ़ी पर मनुष्य अभी केवल नीचे ही के सिरे पर है।

दूसरा अध्याय

चींटियों की राज्य-व्यवस्था

समस्त सामाजिक कीड़ों मे चींटियाँ सबसे अधिक सफल और कदाचित सबसे ज्यादा विचित्र हैं। तीन हजार से ऊपर उनकी समस्त जातियाँ सामाजिक होती हैं। यद्यपि वे जाति-भेद प्रदर्शित करती हैं किन्तु इसके साथ ही यह भी है कि उनके समाज के आकार और पेचीलेपन मे बहुत ही विभिन्नता होती है। कुछ जातियाँ ऐसी होती हैं जिनके बिल में कुछ दर्जनों से अधिक व्यक्ति नहीं होते किन्तु इसके विपरीत ऐसी भी जातियाँ होती हैं जैसे कि "अट्टा" जिनके एक-एक उपनिवेश में पाँच लाख तक प्राणी रहते हैं।

वर्रों और मधु-मक्खियों के विशेष व्यक्तियों की तरह चींटियाँ सिर्फ थोड़ी-सी विलक्षण रानियों को छोड़ कर (जो अकर्मण्य होकर अण्डों से लदी रहती है) कभी भी बहुत बड़ी नहीं होतीं। सबसे बड़ी नपुंसक चींटियाँ भी तौल मे तीन रत्ती (एक ग्राम) से बहुत ही कम होती हैं, दूसरे शब्दों में, एक औसत आदमी की तौल के बराबर होने के लिए एक लाख से ऊपर चींटियाँ चढ़ानी पड़ेगी। किन्तु मनुष्य के आकारों के अन्तर की अपेक्षा तरुण चींटियों के आकारों मे बड़ा अन्तर होता है। यदि एक ओर हम किसी बौने को ले लें और दूसरी

तरफ किसी चर्बी से लदे हुए किसी विलक्षण मनुष्य को रक्खे तो भी सबसे बडा मनुष्य सबसे छोटे मनुष्य से तौल मे २५ या ३० गुने से अधिक न होगा और यदि हम शरीर के साधारण नमूने ले तो अन्तर दस गुने से अधिक न होगा किन्तु सबसे छोटी श्रमिक चीटियाँ अपने सबसे बड़े नातेदारों से तौल मे कई हजार गुना कम होती है। एक ही उपनिवेश के प्राणियों के शरीर मे एक हजार गुना तक अन्तर हो सकता है। जैसा कि "कैरबरा" नामक चींटी मे होता है।

आम तौर पर चींटियो के घर धरती के नीचे होते है और उनमे विशेषता यह होती है कि मधु-मक्खियो तथा बर्रो के घरों की अपेक्षा वे सदैव ही अनियमित ढग से बने होते है। न तो उनमे शहद रखने की कोठरियाँ होती हैं और न प्रत्येक बच्चे के लिए अलग अलग कमरे। शेष मे कमरों का एक अनियमित सिलसिला रह जाता है, जिसमे एक कमरे को दूसरे कमरे से सबन्धित करने के लिए तथा बाहर जाने के लिए मार्ग भी बिल्कुल अनियमित रीति से बने रहते है। रेखा-गणित की सी निश्चित बनावट की कमी के कारण उनके घर हमारे लिए बहुत कम रोचक रह जाते है। किन्तु उनकी यह अनियमितता वास्तव मे उनके प्रगतिशील होने का चिन्ह है, क्योंकि इसका यह अर्थ होता है कि उनके स्वभाव मे लोच है जो स्थिति के अनुसार बन जाने वाला है और यदि परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती हैं तो पुराना घोंसला छोड दिया जा सकता है तथा थोडे ही समय और परिश्रम से नया बना लिया जाता है। ठीक यही बात उनके बच्चों के लालन-पालन पर भी लागू होती है। उनके बच्चों की कोठरियाँ निश्चित एवं स्थायी नहीं होती हैं। नमी और सर्दी की कमी-वेशी की सुविधा के अनुसार उन्हे एक

कमरे से दूसरे कमरे मे ले जाया जाता है। कभी-कभी इल्लों को धूप-स्नान कराने के लिए बाहर भी निकाला जाता है। जब कभी बिल से कोई विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं तो शीघ्र ही सारे अण्डे-बच्चों को किसी सुरक्षित स्थान मे पहुँचा दिया जाता है।

मधु-मक्खियों की यंत्र सदृश कार्य-प्रणाली से चींटियों की इस व्यवस्था मे प्रत्यक्ष रूप से एक सीधी व्यवस्था रहती है और अप्रत्यक्ष रूप से यह भी लाभ रहता है कि श्रमिकों का बच्चों से स्थायी और घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। परिणाम स्वरूप उनके मन के विकास पर इस सम्बन्ध का प्रभाव पडे बिना नहीं रहता।

अपने असहाय बच्चों से लगातार सम्बन्ध रखने के कारण यदि उनकी दाइयों मे बहुत से सामाजिक गुण उत्पन्न हो गये है, तो उनके स्थानीय स्वभाव और उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों से निकट सम्बन्ध रखने के कारण उनमे समझ तथा जुटने की शक्ति उत्पन्न होने मे सहायता मिली है। इसी विशेष बात को बाबत पचास वर्ष हुए Espinas महाशय ने कहा था कि "पृथ्वी पर ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है जिससे निश्चित सूचना न प्राप्त होती हो।" इसके साथ ही हम यह भी कह सकते हैं कि जिन कठिनाइयों पर सदा विजय प्राप्त की जाती है उनसे सूझ-बूझ के कामों मे जुटने की शक्ति मे अवश्य वृद्धि होती है। तनिक सोचिए तो कि उस चींटी के लिए थोड़ी-सी घास कितना बडा सघन बन है जो अपना शिकार घसीटे लिए जा रही हो या एक छोटा-सा नाला कितनी बड़ी गङ्गा है। इसके अतिरिक्त हवा मे रहने वाले जीवधारियों की अपेक्षा पृथ्वी पर रहने वाले जीवों के लिए स्थूल पदार्थों का प्रयोग करना अधिक सरल है। वायु मे विचरने वाले जीवों (मसलन मधु-मक्खी) को जब अपना घोंसला बनाना

दूसरे प्रकार के मत के ठीक होने की सम्भावना इस बात से सिद्ध होती है कि कुछ चीटियाँ केवल कोल उत्पन्न करने वाले वृक्षों मे ही हमेशा से रहती आ रही है और इस बात से भी इस मत की पुष्टि होती है कि कुछ कोल ठीक इसी प्रयोजन से बने हुए मालूम देते हैं, लेकिन अभी तक इस बात का पक्का प्रमाण नहीं मिला है कि पौधो के लाभ की जो बात कही जाती है वह हो ही जाती हो। अतः यह मसला अभी तक सदेहात्मक ही है।

पत्तियों से घोंसले बनाने वाली चीटियाँ हमारे सामने अपने आचरण की एक नितान्त आश्चर्यजनक घटना उपस्थित करती है। उनके काम मे श्रमिक रूप से बालकों का भी प्रयोग होता है। "अफलिन" महोदय का कहना है कि एक घोंसले मे उन्होंने जान-बूझ कर एक छोटा-सा छेद कर दिया। तुरत ही श्रमिकों की एक सख्या बाहर की ओर दौड कर आ गई। छिद्र की दराज जिस स्थान पर कम थी वहाँ उन्होंने काम करना प्रारम्भ कर दिया। एक ओर अपने जबडों और दूसरी तरफ अपने पैरो से पकड कर दोनो किनारों को मिला दिया और धीरे-धीरे किनारो को पकड कर सारी लम्बाई पूरी कर दी। जितनी देर तक एक दल बाहर काम करता रहा उतने ही समय मे भीतर श्रमिकों का दूसरा दस्ता जमा हो गया। ये अपने जबडो में कीट-डिम्बो (larva) को लिए हुए थीं। जब बाहरी दल ने किनारो को खींचकर ठीक स्थान पर पहुँचा दिया तब भीतर वाले समूह ने अपने जबडो से कीट डिम्बों को दबाना शुरू कर दिया। इस पर कीट-डिम्ब अपने मुँह की लार-ग्रन्थियो से बडी तेजी से रस निकालने लगे। यह लार चिपकने मे बडी दृढ होती है और श्रमिक इसका प्रयोग दराज़ के सिरो को चिपकाने मे करते हैं तथा कीट-डिम्बों को जीवित ढरकियों की तरह एक

किनारे से दूसरे छोर तक इधर-उधर फेरा करते हैं। घोंसले की साधारण इमारत बनाने मे भी इसी उपाय का प्रयोग किया जाता है। मनुष्य और चींटियो के व्यवहार का अन्तर कितनी सुन्दरता से ये चींटिएँ दिखलाती हैं। दराज़ को पूरा करने मे, जहाँ तक अपने को बिनने वाली क्रिया के अनुकूल बनाने का सम्बन्ध है कि चीटियाँ एक निम्न कोटि की निश्चित बुद्धि का प्रयोग करती हैं परन्तु कीट-डिम्बों से लाभ उठाने की समूची क्रिया की भित्ति स्वयंभू-प्रवृत्ति की है। राज-मजदूरों के से औजारो के रूप मे प्रयोग होने से कीट-डिम्बों की सारी रचना मे वंश-प्रकृति के लिए परिवर्तन हो जाता है। केवल उनकी लार-ग्रन्थियाँ ही साधारण लार-ग्रंथियों से बड़ी नहीं हो जातीं बल्कि उनकी लार भी अधिक चिपकने वाली हो जाती हैं। उत्पत्ति सम्बन्धी इन परिवर्तनों के बिना जिन्हें चींटियां स्वयं उत्पन्न करने मे असमर्थ हैं, घोंसलों के बनाने में श्रमिकों की क्रियाएँ बिल्कुल व्यर्थ हो जायेंगी। इसी तरह हमने भी जान-बूझ कर न तो अपने पेट में (Hydrocloric Acid) नमक का तेजाब पैदा किया है और न अपनी इन्द्रियों का रूप निर्माण किया है।

तीसरा अध्याय

जीवन-इतिहास

पड़ती हैं और कभी-कभी तो मीलों तक इन कामातुर नर-मादा चींटियो के झुंड हवा को आच्छादित कर देते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि धरती के भीतर वाले घोंसलों की कोठरियों से स्वच्छ वायु मे ये सामूहिक प्रस्थान उष्ण तथा शान्त दिनों में होते हैं। इस बात मे तनिक सन्देह नहीं है कि ऋतु की विशेष परिस्थितियाँ ही नरो और रानियों को उडान मे सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि बहुत से घोंसले एक ही समय मे अपने उर्वरा-शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियो को बाहर निकालते है। इसका परिणाम यह होता है कि आपस मे विभिन्न जातियो के अन्तर-गर्भाधान से नई सृष्टि की वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है।

न तो अल्पजीवी नर और न दीर्घजीवी रानियाँ, केवल एक इसी अवसर पर अपने परो का प्रयोग करती हैं। हवा में निषक होता है और रानी शेष जीवन के लिए लाखों शुक्राणु अपने छोटे-से थैले मे सुरक्षित रूप से लेकर पृथ्वी पर उतरती है। इसे थैले की डोरियाँ उसकी गर्दन की एक पेशी के जरिये जो उसके जनन-प्रदेश मे खुलती है, दृढता के साथ बँध जाती हैं। पृथ्वी पर आकर वह अपने पङ्खो को गिरा देती है और या तो भूमि मे एक छोटी सी कोठरी खोद लेती है या किसी पत्थर या छाल के नीचे बना बनाया स्थान ढूँढ लेती है। ऐसा करने के पश्चात् वह कोठरी का द्वार बन्द करके स्वेच्छिणी बन्दी बन जाती है। यह बात विचित्र है कि उडान के समय उसकी बच्चे-दानी के अंडे कच्चे और बहुत ही छोटे होते हैं—कदाचित् इस अभिप्राय से कि उसका वजन न बढने पावे और उडने मे सुगमता हो—किन्तु बाद मे इन अडो के पकने के लिए कई सप्ताह या कई महीने लग जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक विचित्र

बात यह है कि यह सप्ताह या महीने बिना भोजन किये ही बीतते हैं। चींटियों की यह परिस्थिति देश-देशान्तर भ्रमण करने वाली सोलमन मछली से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। सच बात तो यह है कि उड़ने के लिए बड़ी पेशियों की जरूरत होती है, पङ्खों को गिरा देने से इन पेशियों पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव पड़ता है, जिसे आज तक कोई समझ ही नहीं सका। इन पङ्खों के टूट जाने से इनका द्रव्य पदार्थ गल कर क्रमशः रक्त में प्रविष्ट हो जाता है। यह रक्त और उदर की संग्रहीत चर्बी मिल कर रानी के आंतरिक भोजन-भडार का काम करते हैं। इससे पोषित होकर वह पलती है और अपने अंडे देती रहती है। जब उससे बच्चे निकलते है तो उन्हें अपनी लार से भोजन कराती है। वास्तव में यह भोजन सामग्री पर्याप्त नहीं होती अतः परिणाम स्वरूप प्रथम बार के निकलने वाले श्रमिक सदैव ही असाधारणतया छोटे होते है। तुरन्त ही वे अपना मार्ग खोद कर बाहर निकल आते और अपना भोजन ढूँढ लेते हैं तथा लौट कर द्वितीय बार निकलने वाले बच्चों की देख-भाल अपने जिम्मे ले लेते हैं।

बच्चों का पालन-पोषण कोई सरल काम नहीं है। पहली बात तो यह है कि अंडे उस समय तक फूटते ही नहीं जब तक श्रमिक बराबर उन्हे चाटते न रहे। साथ ही यह बात भी है कि बिल के अन्दर की सर्दी-गर्मी के अनुसार उन्हे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना अनिवार्य है। कीट-डिम्बों और इल्लों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया जाता है और मालूम यह देता कि इल्लों की क्रमवृद्धि के लिए यह आवश्यक है। उपर्युक्त व्यवहार मधु-मक्खियों और बर्रों की कार्य-प्रणाली के बिल्कुल विपरीत है क्योंकि इनके अंडों को श्रमिक कभी नहीं छूते और

जब तक बच्चे पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो जाते वे अपनी कोठरियों से बाहर नहीं निकलते। श्रमिक ही बच्चों को सारा भोजन कराते है। वे उन्हे या तो कीडे-मकोड़े के माँस के छोटे-छोटे टुकड़े खिलाते हैं या समुदाय के द्वारा उगला हुआ तरल पदार्थ। किन्तु यह पिछली बात केवल उच्च कोटि की आकृति वालो ही मे होती है और विचित्र बात यह है कि कोई भी कीट-डिम्ब मल-त्याग नहीं करते और वास्तव मे वे ऐसा करने के अयोग्य भी होते हैं, क्योंकि उनके उदर का मुँह आँतों मे जाकर नहीं खुलता। जब वे तनिक बडे होकर इल्ली अवस्था के हो जाते हैं तब उदर और आँतो का मार्ग-सम्बन्ध खुल जाता है। उस समय इल्ले-जीवन का सारा एकत्रित मल एक साथ निकल पड़ता हैं। कदाचित् ऐसा इसलिए होता है कि श्रमिको का घोंसले को साफ रखने का काम सरल बना रहे।

बच्चा (grules) को दाइयाँ नियमित रूप से धोती रहती हैं किन्तु इस चाटन की क्रिया से यद्यपि निश्चित रूप से सफाई होती रहती है पर इस क्रिया की अधिकतर उत्पत्ति श्रमिकों की लालुपता से होती हैं। पूर्ण-विकसित बच्चे अपने लिए कीट-कोष बनाते है और इस रूप मे उन्हे भूल से "चींटियो के अडे" कहा जाता है। अन्तिम विकास अपरिवर्तनशील तरुणावस्था का होता है। यहाँ पर चींटियाँ एक बार पुनः उस व्यापक नियम को प्रमाणित करती हैं कि प्राणिशास्त्र सम्बन्धी प्रगति बच्चों की परतन्त्रता की अधिकता के साथ-साथ चलती है। कीडों मे केवल वे ही ऐसे होते हैं जिन्हें सहायता की आवश्यकता होती है या वे अपने बन्दीगृह से सहायता देकर बाहर निकाले जाते है। पहले तरुण नपुसक कीट-कोषों मे छेद करके सहायता पहुँचाते हैं; किन्तु कीड़ा जो उस समय निकलता है वह स्वतन्त्रता

से इतना पर होता है कि उसको "पत्तहीन" का विशेष नाम दिया जाता। उस पर पूर्ण रूप से वर्णक नहीं आता और वह कमीज़ की तरह के एक खोल से ढका रहता है, जो वास्तव मे उसका अन्तिम पर्ण-पतन या (रोयें गिराना) होता है। इन रोयों को दाइयाँ नोच डालती हैं। "बुकनर" महाशय का कहना है; जब हम यह देखते हैं कि "बच्चे कैसे नहलाये जाते हैं और उन पर कैसे ब्रुश किया जाता है तथा किस प्रकार चुगाया जाता है तब हमे अनायास मनुष्यों के बच्चों के पालन-पोषण का ध्यान हो आता है।"

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को विभिन्न कार्य कैसे सौंपे जाते हैं इस सम्बन्ध मे "लार्ड एबबरी" ने कुछ मनोरञ्जक बातें देखी हैं और उनका वर्णन किया है। उन्होंने तीन महीने तक प्रति दिन घंटों एक छोटे से कृत्रिम उपनिवेश का निरीक्षण किया। इस उपनिवेश के श्रमिकों पर ऐसे चिन्ह लगा दिये गये थे कि उनका प्रत्येक व्यक्ति पहचान लिया जा सकता था। घोंसले के बाहर एक विशेष स्थान पर शहद रख कर उपनिवेश के भोजन का प्रबन्ध कर दिया गया था। यह निरीक्षण जाड़े की ऋतु मे हुआ जब कि अधिक भोजन की आवश्यकता नहीं होती। दो महीने से भी अधिक दिनों तक कुछ भूली-भटकी चींटियों को छोड कर केवल तीन श्रमिक शहद के पास आते रहे। यही तीन ऐसे भोजन वाहक और ढोलाई करने वाले श्रमिक थे जिन्होंने बाकी उपनिवेश को अपनी उडेलनेवाली क्रिया से भोजन पहुँचाया था। इस समय के बाद "एबबरी" महोदय ने उन तीनों में से एक को क़ैद कर लिया और उसी संध्या को एक दूसरी चींटी निकल कर भोजन के पास आ गई। यह नया भोजन वाहक उस समय तक नियमित रूप से अपना काम करता रहा, जब तक कि दो दिन के

बाद उसे भी कैद कर लिया गया। दो दिन के बाद एक और नया भोजन-वाहक प्रकट हुआ और कुछ दिन के बाद उसका एक नया साथी आ गया। एक दूसरे बिल मे भी ऐसी ही घटना हुई, किन्तु इसमे से मूल भोजन-वाहकों मे से कोई भी बन्दी नहीं बनाया गया। इसलिए ये तीनों बिना किसी परिवर्तन के अपना कार्य करते रहे।

परिश्रम का विभाजन कैसे तय होता है यह बात अभी तक साफ नहीं हुई है। व्यक्तियों पर चिन्ह लगा कर शान्ति के साथ निरीक्षण करने के उपाय का प्रयोग करके "फ्रिश" महोदय ने मधु-मक्खियों का बड़ा सुन्दर अध्ययन किया है। इनके इस प्रयोग से मधु-मक्खियों के सम्बन्ध मे हमारे विचारों मे एक क्रान्ति उत्पन्न हो गई है। अतः यह निश्चित है कि उतना ही वृहद ज्ञान-भंडार और रोचकता उस मनुष्य की प्रतीक्षा कर रहा है जो चिन्हित चींटियों का पूर्ण रूपेण अध्ययन करने के लिये अपना समर्पण कर दे। इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके वह व्यक्ति किसी एक उप-निवेश का हाल प्रारम्भ से लिख सकता है। इस काम को कोई शौकीन विद्या-प्रेमी या प्राणिशास्त्र का पेशेवर प्राणी दोनों ही अच्छी तरह से कर सकते हैं,

एक उपनिवेश को प्रौढावस्था तक पहुँचने के लिए कई वर्ष लग सकते है, और उस समय जब कि नर-मादाओं के झुंड मुक्त कर दिये जाते हैं, पुराना उपनिवेश जारी रहता है। क्योंकि प्राचीन रानी दस वर्ष या इससे अधिक समय तक रह सकती है, सत्रह वर्ष तक की पुरानी रानियों का उल्लेख तो हुआ है। यह प्राचीन रानी, अपने एक बार के मौलिक शुक्राणु भंडार से, अपनी मृत्यु पर्यंत सफल अंडे देने की क्रिया जारी रखती है। दूसरी बात यह है कि कुछ चींटियो मे ऐसा होता है कि पुत्री

रानियाँ गर्भ-धारण करने (या उर्वरा होकर) के पश्चात नियमित रूप से अपने घोंसले मे लौट आती हैं—और चूँकि रानी चींटी, रानी मधु मक्खी के विपरीत अपनी जाति की दूसरी रानियों की शत्रु नहीं होती, अतः घोंसले मे अण्डे देने वाली रानियों का एक समूह वन जाता है और परिणाम स्वरूप एक मानव राष्ट्र की तरह संभावित अमरता प्राप्त कर लेता है। यदि ऐसा उपनिवेश बढ़ता ही जावे तो उसका आकार 'एक असुखकर अवस्था को पहुँच जायगा और उसके भोजन की आवश्यकता यातायात के साधन से आगे निकल भागेगी। जब ऐसा होता है तब नये घोंसले उसी प्रकार से बनाये जाते हैं जैसे कि मनुष्य समाज की आबादी बढ़ने पर नई बस्तियाँ बसाई जाती हैं। श्रमिकों का एक समूह एक या अधिक रानी लेकर नया उपनिवेश बसाने के लिए पुराने घर को छोड देता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि नया घर पुराने घर से दूर नहीं होता और तब उपनिवेशों का एक राष्ट्र-समवाय (fedration) बन जाता है। यह राष्ट्र-समवाय अलग अलग उपनिवेशों से इस बात में विभिन्नता रखता है कि समस्त श्रमिकों मे मैत्री-भाव बना रहता है और वे राष्ट्र-समवाय क एक दूसरे घोंसले में आ जा सकते हैं।

जब कोई अकेली रानी अलग से एक उपनिवेश स्थापित करती है तो ऊपर कही हुई बात के विरुद्ध इस उपनिवेश की चींटियाँ अपनी ही जाति के अन्य उपनिवेश की चींटियों से शत्रुता प्रकट करती है, यहाँ तक कि उस उपनिवेश का भी दुश्मन बन जाती हैं जिसने उनकी रानी संस्थापक को जन्म दिया था। कदाचित् मालूम ऐसा देता है कि श्रमिकों का अपनी ही जाति की अन्य चींटियों के प्रति मित्रता या शत्रुता प्रकट करना

सुगंध पर निर्भर करता है। प्रत्येक बिल में एक सूक्ष्म प्रकार की बिल-गंध होती है जो बिल के हर एक रहने वाले के शरीर से निकलती रहती है। यह गंध-निर्धारित मित्रता बढ़कर अन्य जाति की चींटियों तक भी पहुँच सकती है और कभी-कभी तो अन्य कीड़ों के प्रति भी प्रदर्शित की जाती है। दास बनाने वाली और परजीवी चींटियों के मिश्रित उपनिवेशों का अस्तित्व प्रत्यक्षतः केवल इस प्राप्त की हुई सहिष्णुता पर ही नहीं निर्धारित होता किन्तु मिश्रित-चींटी-उपनिवेश मनुष्यों द्वारा भी कृत्रिम रूप से बनाये जा सकते हैं। मिस "फील्ड" ने फोरल महाशय के प्रयोगों को आगे बढ़ाते हुए एक प्रयोग किया था। उन्होंने एक जाति की चींटियों के पास दूसरी जाति के इल्लों को रख दिया था, जब विजातीय चींटियों ने उन इल्लों को से कर बच्चे निकाले तब वे उपनिवेश के अंग स्वरूप स्वीकार कर लिए गये। केवल इतना ही नहीं हुआ किन्तु आगे चल कर उन्होंने अपनी उन सगी बहनों के प्रति भी शत्रुता प्रकट की जो बढ़ने के लिए उनके बिलों में छोड़ दी गई थीं। इस प्रकार से चींटियों में गंध को वही स्थान प्राप्त है जो हमारे लिए राष्ट्रीय परम्पराओं को। देश-भक्ति की आधार शिला जैसे हमको प्रेरित करती है वैसे ही वह चींटियों में भी रक्त संबंध के परे जाकर सगे सम्बन्धियों को एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ने को बाध्य कर सकती है। दोनों ही दशाओं में एक ही उद्देश्य की सिद्धि होती है अर्थात् एक व्यक्ति को उस समाज के व्यक्तित्व के आधीन होना पड़ता है जिसका वह अंग होता है किन्तु दोनों के मार्ग भिन्न-भिन्न होते हैं।

प्रकृति में जो मिश्रित उपनिवेश पाये जाते हैं उनमें सदैव ही बहुत निकट का संबन्ध रखने वाली दो जातियाँ ही मिलती है। इसका मुख्य कारण यह है कि बच्चों के पालन-पोषण का सवाल

पेचीदा और कोमलता के साथ व्यवस्थित प्रक्रिया है। अतः एक प्रकार की चींटियों के कीट-डिम्बों की आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरी जाति के श्रमिकों की स्वयंभू-प्रवृत्ति द्वारा बड़ी कठिनता से की जा सकती है। किन्तु जब यह कठिनाई दूर कर दी जाती है, जैसे कि मिस फील्ड ने एक नये बिल से पूर्ण रूप से विकसित कीट-डिम्बों को रख कर अपने परीक्षणों द्वारा किया था तो उस समय के निरीक्षण से मालूम देता है कि गंध बहुत से भेद-विभेदों को अपने अन्तर्गत कर लेती है। इसी युक्ति के सहारे मिस फील्ड ऐसे मिश्रित उपनिवेश बनाने से सफल हो सकी थीं जिन मे ऐसी दो जातियाँ सम्मिलित थीं जो एक ही परिवार की शाखाएँ होते हुए भी एक-दूसरे से बहुत ही भिन्न थीं। निःसंदेह यह बिल-गंध ही है जिसकी सुरक्षा के सहारे मे अनेक चींटी-अतिथि भी रह सकते है। यह अतिथि अन्य प्रकार के कीडे होते है जो चींटियों के घरों मे उनके आश्रित होकर रहते हैं।

जाति और योनि भेद के सबन्ध मे यह निश्चित है कि सभी प्रकार की चींटी जातियों मे कम से कम श्रमिकों की एक बाँझ जाति होती है जो उर्वरा नरों और मादाओं के अतिरिक्त होती है। शारीरिक व्यवच्छेद विद्या ने यह प्रकट कर दिया है कि श्रमिक एक बाँझ या नपुंसक मादा है, जिसमे प्राथमिक डिम्ब-कोष और डिम्ब नलियों के चिन्ह पाये जाते हैं। यह बात निश्चित है कि नर और मादा-चाहे वह उर्वरा रानी ही हो या बाँझ श्रमिक—के भेद का निर्णय निषेक या उसके अभाव पर निर्भर है। यही हाल मधु—मक्खियों और बर्रों का भी है। फलित (Fertilized) अंडों से मादाएँ और अफलित (unfertilized) अंडों से नर उत्पन्न होते है। योनिनिर्णय का नियम पेशी के उस छल्ले घेरे (Sphincter) से होता है जो रानी

के शरीर में शुक्र-कीटो से भरी हुई थैली के मुँह को चारों ओर से घेरे रहता है। जब छिद्र से अंडा निकलने लगता है और यदि वह खुल जाता है, तो कुछ शुक्र कीट निकल जाते है और निषेक प्रारभ हो जाता है; और यदि वह बद रहता है तो अन्डा अफलित रहता है तथा नर को उत्पन्न करने वाला होता है। हम इस बात से बिलकुल अनभिज्ञ है कि किस प्रभाव से रानी चींटी अपने इस भाग्य निर्णायक पेशी के घेरे को खोलती तथा बद करती है। अनेक सामाजिक कीडो की तरह चींटियों मे भी नपुसक और रानी का अतर भोजन के उस प्रकार से निश्चित होता है जो छोटे कीट डिम्बों को दिया जाता है। किन्तु सविस्तार यह बात भी हमे चीटियों की अपेक्षा मधु-मक्खियों के सम्बन्ध मे अधिक मालूम हुई है। अभी तक यह नहीं मालूम हुआ है कि जब दोनो प्रकार के जीवों की सत्ता मौजूद है, तब पंख सहित और पख रहित रानियों या नरों मे अन्तर उत्पन्न होने का क्या कारण है ?

नर और मादा के भेद वंश-प्रकृति (Heredity) से निश्चित होते है और रानी तथा नपुसक का अन्तर उत्तरगामी व्यवहार से तय होता है। इन दोनों बातो का प्रमाण उस अध्ययन से प्राप्त होता है जिसके द्वारा कभी-कभी ऐसी पच्चीकारी की विलक्षण शकले देखने को मिलती है जिनमे शरीर का आधा भाग तो एक प्रकार का होता है और शेष दूसरी तरह का। ऐसे सधियोग तो मिलते हैं जिनमे नर भागे का ससर्ग रानी भाग से हो, नर का श्रमिक से हो और नर का सैनिक से हो, किन्तु रानी भाग का ससर्ग न तो कभी श्रमिक से मिलता है और न सैनिक से। इन सभी विलक्षण जीवो (जिन्हें (gynandromorphs) गिनन्ड्रो मारफस् कहा जाता है)

का स्पष्टीकरण इस बात से होता है कि उनके गर्भाधान में कुछ असाधारण घटना घटित हो गई हो, संभवतः शुक्र का प्रवेश उस समय हुआ हो जब कि अंडे का विभाजन प्रारंभ हो गया हो और उसका संयोग दो या अधिक उत्पादित कोषाणुओं के स्थान में केवल एक ही के केन्द्र से हुआ हो।

ऐसी चींटियां तो होती हैं जिनमें रानी और नपुंसक दोनों की प्रकृति पाई जाती है इनको (Pseudogynes) मिथ्या-नारियां कहते हैं। इनमें पच्चाकारी नहीं होतीं किन्तु इन का प्रत्येक अंग दोनों के बीच का होता है। मालूम ऐसा देता है कि वे भोजन के उस परिवर्तन का परिणाम स्वरूप हैं जो क्रम-वृद्धि काल के बीच ही में हो जाता है। ये मिथ्या-नारियाँ और कभी-कभी वास्तविक श्रमिक भी अण्डे दे सकते हैं, किन्तु इनमें बीज तो कभी बोया नहीं गया है अतः इन अण्डों से केवल नर ही उत्पन्न हो सकते हैं।

चौथा अध्याय

भोजन का अर्थ-शास्त्र

मनुष्यों के सभ्य समाज के सदस्य आर्थिक बंधनों में बँधे रहते हैं। ज़मीन जोतने वालों के अतिरिक्त और कोई भी मनुष्य स्वयं अपने श्रम से अपना आहार नहीं प्राप्त करता। ये किसान भी एक विशेष वस्तु को उत्पन्न करने की विशेषता को प्राप्त करने लगते हैं। जिन दूसरी वस्तुओं की उन्हें आवश्यकता होती है, उन्हें वे विनिमय के द्वारा प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए जावा द्वीप को ले लीजिए। वहाँ की खेतिहर आबादी इतनी घनी है

कि वह चावल के आयात के बिना जीवित ही नहीं रह सकती। इस आयात के दाम वे लोग अधिक मूल्यवान वस्तुएँ जैसे काफी रबड, शक्कर तथा कई प्रकार के शाक देकर चुकाते है और इन्हीं को वे बोते हैं।

रुपये के रूप में हमारे पास विनिमय का एक सर्व-व्यापी साधन मौजूद है इस साधन के द्वारा हम आपस मे एक-दूसरे की सेवाओं के आदान-प्रदान को ऐसे लोचदार समतल तक ले जाते हैं जो वस्तुओं को सीधे सीधे बदल लेने से सभव नहीं हो सकता। एक चीटी उपनिवेशो की चीटियाँ भी ठीक इसी प्रकार एक आर्थिक सपूर्णता मे बँधी हुई है। किन्तु इस कार्य की सिद्धि के मार्ग भिन्न है और वास्तव मे मनुष्य द्वारा प्रयोग किये जाने वाले मार्गो से उतने ही प्रथक है जैसे कि चींटियों की बिल-गंध हमारे देश-भक्ति प्राप्त के तरीको और व्यक्ति को समाज के अधीन रखने के मार्गो से जुदा हैं।

पहली बात यह है कि व्यवहारिकता की दृष्टि से सारे उपनिवेश का पेट एक ही होता है। यह प्रबन्ध उपनिवेश बसाने वाले polyps अर्थात अनेक पैरों वाले कीडों मे प्रचलित हैं। किन्तु उनमे 'इसकी सिद्धि सीधे और स्थायी यातायात तथा सबाद साधनों (communication) द्वारा होती है। इनके प्रत्येक व्यक्ति की पाचन गुफाएँ उसके आधार-भूत तने मे एक ही संयुक्त संबध कारक नली मे खुलती है। चींटियों को विवशतः एक कम सरल मार्ग ग्रहण करना पडा। तरल शोरवा या झोल मे रूप से परिवर्तित होने के पश्चात्, भोजन संकीर्ण गले मे उतार दिया जाता है, जो सिर की स्नायु-माला (Nerve colleo) का भेदन करता हुआ समस्त वक्ष स्थल में प्रवेश करता है और उस गलस्थली

मे खुलता है जो उदर के अगले भाग में होतो है। इसे फोरेल ने "सामाजिक उदर" का नाम दिया है। एक पेचदार या टेढी-मेढ़ो ढट्टी से यह गलस्थली वास्तविक उदर में खुलती है। यह उदर फिर छोटी आँत की ओर मार्ग प्रदर्शित करता है। और फिर वहा से लम्बे मलाशय से गुह्यद्वार मे पहुँचता है।

जब श्रमिक को पर्याप्त भोजन मिल जाता है तो आंशिक रूप से पचे हुए भोजन का केवल एक थोडा-सा भाग उदर और आँतों में पहुँचता है। प्रथमावस्था मे यह भोजन गलस्थलो में इकट्ठा होता है और जो अंश उदर तथा आंतों मे पहुँच जाता है उसे स्वयं जन्तु सात्मक कर लेता है। शेष भाग का अधिकांश उपनिवेश के अन्य सदस्यों मे बँट जाता है जो अपनो जिह्वाएँ फैला कर उस प्राणी से प्रार्थनाये करते हैं और सौभाग्यशाली जीव को अपने जल्दी-जल्दी हिलने वाले मुँह के बालों से, जो स्पर्श अनुभव कराते है—चाटने लगते हैं। इस क्रिया के होने पर गल-स्थली से एक बूँद भाजन उडेल कर प्रार्थी के मुँह मे डाल दिया जाना है मिश्रित मिष्ठान्न Pudding का प्रमाण उड़ेलने की क्रिया मे मिल जाता है। यदि एक चींटी को एक रासायनिक रँग से रँगे हुए शर्वत को एक बुभुक्षित को तरह स्वयं खाने का अवसर दे दिया जाय तो वह रंग उसके उदर में चमकता हुआ दिखाई देगा। और जब वह अपने नागरिक साथियों में उसका कुछ अंश इधर-उधर बाँटेगी और वे इस क्रिया को दोहरायेगे तब लगभग प्रत्येक व्यक्ति के उदर में वह रंग थोडा-थोड़ा झलकने लगेगा। मान लो कि मूल रंग नीला है, तो सब के उदर मे एक थोडो-सी नोलिमा झलकने लगेगो। इस प्रकार से समस्त उपनिवेश के सामूहिक उदर का पालन हो जायेगा।

श्रमिकों और कीट डिम्बों के बीच मे होने वाला भोजन का आदान-प्रदान और भी विचित्र है। कीट-डिम्बों के व्यतीत काल पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि उस समय उनमे कोई विशेषता न थी। क्योंकि उनकी अंतडियों का रूप सरल था, उनके कोई सामाजिक उदर न था और वे इस योग्य थे कि चाहे ठोस चाहे तरल कैसा भी भोजन मिल जाये, वे उसका प्रयोग कर सकते थे। उनमे से बहुतो के कई रीढे होती हैं और उनके जबडों की जडों के पास खुरदर पर्वत-पृष्ठ होते हैं। जब ये एक-दूसरे के साथ रगडे जाते है, तो सभवतः एक ऐसी कर्कश ध्वनि उत्पन्न होती है जैसी एक शिशु अपने कोलाहल के समय करता है। इससे उनकी दाइयों का ध्यान आकर्षित हो सकता है।

चींटियों और बर्रों के विषय मे मिस्टर 'रोबाद' और मिस्टर 'ह्वीलर' ने खोज करके कुछ ऐसी महत्वपूर्ण बाते निकाली है जो प्रमाणित करती हैं कि भोजन खिलाये जाने के पश्चात् छोटे बच्चे अपने शरीर से एक ऐसा तरल पदार्थ निकालते है जिसे श्रमिक बड़े शौक से चट कर जाते हैं। बर्रों और अनेक चींटियों मे यह तरल पदार्थ एक विशेष प्रकार की मीठी लार होती है, किन्तु अधिकतर चींटियाँ अपनी वाह्य त्वचा से एक चर्बीदार पदार्थ स्वेद के रूप मे निकालती है। चींटियों के एक उप-कुटुम्ब मे कीट-डिम्बों के ऐसे विचित्र उपकरण जुड़े रहते हैं जिनसे वे इस प्रकार का पदाथ अधिक निविष्ट या इत्रके Cancentrated रूप मे निकालते है और इन उपकरणों को चाटना भी संभवतः सरल होता है।

इसी बात का 'ह्वीलर' महोदय ने अपने शब्दों मे इस प्रकार से कहा है; "यद्यपि इस तरह के भिन्न-भिन्न पदार्थ बहुत थोड़ी

मात्रा में उत्पन्न किये जाते हैं। किन्तु वे इतनी उत्तम प्रकृति के होते हैं कि तरुण चींटियाँ उन्हें बड़े उत्साह से ढूँढ़ती रहती हैं। इससे उस आचरण का समाधान होता है जो रानी और श्रमिकों के संबन्ध मे मातृ-प्रेम के नाम से सूचित किया जाता है अर्थात् कीट-डिम्बों को लगातार चाटना और दुलराना अथवा बडी उग्रता के साथ उनकी रक्षा करना और जिस समय बिल मे किसी प्रकार का गड़बड़ हो उस समय उन्हें बड़ी उत्कण्ठा से दूसरे स्थान पर ले जाना। दूसरे शब्दों मे इसका अर्थ यह है कि शुद्ध निजी क्षुधा से प्रेरित होकर, न कि बच्चों की भलाई से उत्साहित होकर और न निरे परोपकारी भाव की चिन्ता से चींटियाँ उस प्रबल लक्ष्य की ओर अग्रसर होती हैं जो कीट-डिम्बों के साथ तरुण चींटियों के घनिष्ट संबन्ध को दीक्षित करता और आश्रय देता है। यह क्रिया ठीक उसी प्रकार होती है जैसी परस्पर भोजन उडेलने मे तरुण श्रमिक अपने इसी प्रकार के संबन्ध बनाये रखने और प्रारम्भ करने में करते है।" प्रतिपादित सेवाओं के बदले में कीट-डिम्बों द्वारा इस प्रकार ऋण अदा करने की क्रिया को 'ह्वीलर' महोदय ने भोज्य पदार्थ विनिमय नाम दिया है। अतः यदि चींटियों की देश-भक्ति गंध पर निर्धारित है तो उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिरता स्वाद पर अवलम्बित है। आपस में मिलाने वाले दोनों सिद्धांत बिल्कुल भिन्न है; क्योंकि सब मे समान रूप से पाई जाने वाली गंध उपनिवेश को केवल आच्छादित करती और उसको एक सूत्र मे बाँधे रहती है, किन्तु "भोज्य पदार्थों के विनिमय" मे एक सच्चा आर्थिक विनिमय है तथा एक वास्तविक सौदा किया जाता है। कीट-डिम्ब तरुणों को उनका अभिलाषित वस्तु भेंट करते है जो उन्हे किसी अन्य स्थान से प्राप्त नही हो सकती और

यह भेट उनकी सेवाओ तथा सरल भोजन की प्रचुरता के बदले मे की जाती है।

यह विषय बडे महत्व का है अत: यह अनुचित न होगा यदि हम अपने विषय से हटकर थोड़ा-सा विचार बर्रों के भोजन विनिमय पर कर ले। इनमे कुछ सरल तथा प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली बातें प्रकट होती हैं। जो पदार्थ बर्रों के बच्चे तरुणों के सामने उपस्थित करते हैं वह लार वाली ग्रथियो का रस होता है। इन बच्चो मे पाचन-क्रिया तनिक भी नहीं होती इसीलिए वे मिष्ठ राल पदार्थ प्रचुर मात्रा मे निकालते है और यह सारा का सारा उनकी दाइयों को पुरस्कार के रूप मे प्राप्त होता है।

"भाजन विनिमय क्रिया" का वर्णन "रोंबाद" महोदय ने इस प्रकार से किया है "ज्योंही कि एक बर्र धाय अपने भोजन की गोलियाँ बॉट चुकती है। त्योंही वह अपने पंख तेजी के साथ फडफड़ा कर आगे बढ़ती है कि वह प्रत्येक उस कोठरी को खोले जिसमे कोई कीट-डिम्ब है। वह ऐसा इसलिए करती है जिससे कि वह उस लार को पीले जो उस कीट-डिम्ब के मुँह मे प्रचुरता से बहती रहती है। दाई का पंख फड़फडाना कीट-डिम्ब के लिए एक संकेत होता है कि वह भोजन ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाय। अतः वह अपना मुँह कोठरी के बाहर निकाल देता है। इस सरल क्रिया के साथ ही बहुधा लार फौरन बहने लगती है। किन्तु यदि लार निकलती नहीं दिखाई देती तो बर्र अपने जबडों मे कीट-डिम्ब का सिर पकड कर अपनी ओर खींचती है और एक दम से उसे कोठरी के भीतर ढकेलते ही स्वयं अपना सिर कोठरी के भीतर घुसेड देती है। इस गतिविधि से कीट-डिम्ब के मुँह मे उत्तेजना उत्पन्न होती है और उसे बाध्य होकर लार निकालनी पड़ती है।

अपने कीट डिम्बों को केवल एक बार भोजन खिलाने के बाद दाइयाँ लार प्राप्त करने के लिये तीन या चार बार तक आ सकती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी कीट-डिम्बों का शोषण भी किया जाता है और उपर्युक्त वर्णित विचित्र व्यवहार से बच्चों को भोजन की पूरक भेट किये ही बिना उनसे लार निकलवाई जाती है। मालूम ऐसा देता है कि तरुणों की यह क्रिया-मौलिकता स्वयं-भू प्रवृत्ति के द्वारा होती है। बर्रों के आर्थिक प्रबन्ध मे इस क्रिया को चोरी कहते है। किन्तु इसे प्रायः सबके-सब नवीन श्रमिक, रानी तथा नर व्यवहार में लाते हैं। यह जान-कर बड़ा मनोरंजन होता है कि लार निकालने की क्रिया को कृत्रिम रूप से भी प्रोत्साहन दिया जा सकता है। यह दो प्रकार से किया जाता है एक तो कीट डिम्बों के मुँह के किनारों को चाट कर और दूसरे कीट-डिम्बों के पास दाइयों के पंख फटफटाने की क्रिया का प्रभाव सीटी से उत्पन्न करके। "केवल इतना ही आवश्यक है कि जोर से सीटी बजाई जाय या बिल के पास तीव्र स्वर मे आवाज निकाली जाय जिससे सब कीट डिम्ब अपनी कोठरियों के मुँह से अपने सर बाहर निकाल ले।"

जे० बी० एस० हालडेन महोदय ने बर्रों के "भोजन विनिमय" के विषय मे प्राणिशास्त्र सम्बन्धी एक नये अर्थ की ओर ध्यान दिलाया है। स्तनपायिओं के रक्त-प्रवाह में भोजन का अधिकतर भाग वास्तव में ईंधन क तौर पर शकर के रूप मे प्रयोग किया जाता है। मांस तथा अन्य पोषक पदार्थों से प्राप्त होने वाले वे (amino acids) जिनमे nitrojen नेत्रजन अभिनोकाम्ल होता है रचना तन्तुओं Tissues की मरम्मत करने के काम मे लाये जाते है, किन्तु इस कार्य के लिए बहुत थोड़ी-सी मात्रा की आवश्यकता होती है, शेष भाग को खंड-खड करके शकर

बना लिया जाता है जिसका उपयोग ईंधन के रूप मे तथा मूत्र द्रव्य सरीखे निःसार नात्रजनिक पदार्थों के रूप में किया जाता है। इसके विपरीत, बढने वाला कुत्ते का पिल्ला या मनुष्य का बच्चा (Nitrogenous) नात्रजनिक भोजन का बहुत अधिक भाग उपयोग मे लाता है। क्योंकि उसे रचना-तन्तुओं की सृष्टि और उनकी मरम्मत दोनों ही करनी पड़ती है। इन बातों मे कीडे-मकोडे स्तनपायिओं से केवल समानता ही नहीं रखते बल्कि आगे भी बढ जाते हैं, क्योंकि शीत-रक्त और आलसी कीट-बच्चे को अपेक्षाकृत कम ईंधन की आवश्यकता होती है। अतः भोजन विनिमय जैसा कि बर्रों द्वारा व्यवहरित होता है केवल सेवाओं और पारितोषकों की एक व्यवस्था है किन्तु उसके द्वारा भोजन का अधिक आर्थिक सद् उपयोग भी निश्चित हो जाता है। हालडेन महाशय, का कहना है,—"जब एक श्रमिक किसी बच्चे को भोजन कराने आता है तब वह बच्चा शकर मिश्रित तरल पदार्थ का एक बूद निकाल कर उसे धन्यवाद देता है। यह तरल पदार्थ बच्चे के किसी काम का नहीं होता किन्तु एक सक्रिय कीडे के लिए वह एक मूल्यवान ईंधन है।"

यह बड़ी विचित्र बात है कि मधु-मक्खियों के बच्चों और तरुणों के बीच में "भोजन विनिमय" का बिल्कुल अभाव होता है। इनमे एक श्रमिक से दूसरे का आदान-प्रदान भी नहीं होता। पहली बात की पुष्टि तो 'हालडेन' के कथन से हो जाती है। मधु-मक्खियों के भोजन मे मुख्य वस्तु पुष्पासव होता है जिसकी शकर उनकी गलस्थली की यात्रा मे शहद मे परिणित हो जाती है और दूसरी वस्तु पराग है जिसे मधु-मक्खी की रोटी भी कहते हैं। इसमें पोषक-तत्व अधिक होता है। तरुण मधु-मक्खियों को

अतिरिक्त श्वेतसार (Carbohydrate) की आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि वह उन्हें अपने साधारण भोजन से सीधे-सीधे मिल जाता है। बच्चों (Grubs) को भी अपना नात्रजनिक तथा अनात्रजनिक भोजन ठीक-ठीक मात्रा मे मिल जाता है और तरुणों के पारस्परिक खिलाने-पिलाने के अभाव का समाधान भी सरलता से हो जाता है। मधु-मक्खियों ने अपने पराग और शहद के लिए कोठरियाँ बना कर कृत्रिम रूप से चींटियों के उपनिवेश के "सामुहिक उदर" की पूर्ति कर ली है। दूसरे श्रमिकों के मुँह मे उड़ेलने के बदले मक्खियों के श्रमिक अपने इकट्ठे किये हुए भंडार को इन कोठरियों मे उडेल जाते है, जिनमें सदैव ही कुछ कोठरियाँ खुली भी रहती है। अतः घर-घुस्सू मक्खियाँ जब भूखी होती है तब इनमे से अपना भोजन निकाल लेती है।

अन्त मे यह कहना अनुचित न होगा कि दीमकों ने सामुहिक भोजन-विनिमय की बड़ी विचित्र व्यवस्था आपस में बना ली है जिसका कि अगले किसी अध्याय में वर्णन होगा।

—:०:—

पाँचवाँ अध्याय

चींटियों की इन्द्रियाँ

चींटियों की इन्द्रियों का विषय बड़ा मनोरंजक है। उनकी दृष्टि कभी भी अधिक तीव्र नहीं हो सकती; क्योंकि उनकी यौगिक आँखों में बहुत थोड़े और बेतरह छितर-बितर पहलू (Facets) होते हैं। लगभग सदैव उपस्थित रहने वाली साधारण अँधेरा या ऐसे रंगीन धब्बे जिनके चारों ओर दूसरे रंग हों

(Ocelli) केवल अति निकट की वस्तुओं को देखने में काम
सकते है या कदाचित् केवल प्रकाश और अधकार का अ
पहचानने मे ही समर्थ होते है । ड्राइवर (Driver) चीं
अपनी सारी भयकरता और स्थान परिवर्तन की क्रियाशील
के होते हुए भी बिलकुल अधी होती हैं। यह बड़ी मनोरजक
है कि कम से कम कुछ चींटियों को नीलातीत या परा-कास
प्रकाश की एक सीमा का शीघ्र बोध होता है। किन्तु हम
प्रकाशकोर को नहीं देख सकते।

चींटियों मे ऐसी विवेक इन्द्रियाँ जिनमे तनिक भी कोमल
हो, केवल उनके स्पर्श अनुभव करने वाले मुँह के बाल होते
ये चचल अग (अवयव) घ्राण और स्पर्श इन्द्रियों के संयोग
अपने चारों ओर के प्रदेशों की इस प्रकार खोज करते हैं कि
हम अपनी खोपडियों मे गंध के अवयवों को धारण करते
सोच भी नहीं सकत। हमार निकट गध मे आकार हीनता त
शून्यता होती है किन्तु चींटियाँ निस्संदेह उन समस्त गधों
रूपों को पहचान लेती है जो छोटे आकार के विशेष पा
पिण्डों से निकलती है। रंग, सपाट रूपता तथा दृष्टि से उत्
होने वाली परछाही और स्पर्श से उत्पन्न होने वाले ठोस
की दृष्टि से उनमे ऐसे पिंड की एक सम्मिलित कल्पना 'अव
होती होगी। एक ही जाति की चींटियो के भिन्न-भिन्न उपनिवे
मे जब युद्ध होता है तब किसी विशेष चिन्ह या वेश-भूषा
मित्रों से शत्रुओं को अलग पहचान लेना असंभव हो जाता
और उनमे कोई विशेष युद्ध घोष भी नहीं होते है। मालूम
है कि स्पर्श अनुभव करने वाले मुँह के बालों के छूने से
तुरत मसला हल हो जाता है। चींटियों के जीव-विज्ञान
संबन्ध में जानने योग्य यह एक प्रत्यक्ष समस्या है कि अपने आ

पास के प्रदेश में एक लंबी यात्रा करने के बाद वे अपने बिलों में लौटने का मार्ग कैसे ढूँढ़ लेती है ? एक बार निश्चित पद चिन्हों के स्थापित हो जाने पर स्वय पगडंडी और उससे चिपकी हुई गंध मामले को बहुत कुछ सुलझा देती है किन्तु उन इक्के दुक्के श्रमिकों का क्या होता है जो चले हुए मार्ग से इधर-उधर भटक कर खोज-बीन किया करते हैं, और उनमे केवल इतनी ही शक्ति नही होती कि वे अपने बिलों मे लौट आवे बल्कि श्रमिकों के उस समूह को भी लौटा लावे जिन्होंने भोजन-प्राप्ति का कोई नया स्थान ढूंढ़ निकाला हो ?

असल बात यह मालूम देती है कि चींटियों की अधिकांश जातियाँ अपना मार्ग ढूंढने मे तीन या चार प्रकार के भिन्न-भिन्न उपायों का प्रयोग करती हैं। कुछ-कुछ वे उस विधि का उपयोग करती जो हमारे लिए बड़े महत्व की है—अर्थात नयन-गोचर प्रदेश की वस्तुओं से अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रकट करना। जहाँ कहीं भी कोई ऐसा पद-चिन्ह बना है जिस पर स्वयं वे या अन्य चींटियाँ गई हैं; वहाँ वे अधिकतर गंध पर भरोसा करती हैं। दिशा के सबन्ध मे गन्ध उनको बहुत कुछ नहीं बता सकती। यद्यपि 'बीथ' (Bethe) महोदय ने एक विस्तृत सिद्धान्त उपस्थित किया है जिसमें उन्होंने मान लिया है कि गन्ध का आकार खोज लेने की शक्ति की सहायता से एक चींटी जान लेती है कि, चींटियों के पद-चिन्हों का रुख किस ओर को है तो भी उन्हे आगे यह भी मानना पड़ा है कि बिल से बाहर जाने वाली चींटियाँ अपने पद-चिन्हों पर लौटने वाली चींटियों में कुछ भिन्न गन्ध छोड़ जाती हैं। किन्तु लार्ड 'आवेबरी' के संकेत का स्थिरता से अनुसरण करके नवीन कार्यकर्ता यह प्रकट करने में समर्थ हुए हैं कि ऐसी बात नहीं है और चींटियाँ अपना मार्ग

ढूँढने में अपने ऊपर पड़ने वाले प्रकाश की दिशा से सहायता प्राप्त करती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई अकेली खोज करने वाली चींटी किसी संदूक के भीतर तीन घंटे के लिए क़ैद कर ली जाती है, और फिर ढक्कन खोल दिया जाता है, तो वह उसी दिशा की ओर चलना प्रारंभ करती है जो उसके मूलमार्ग से उसी कोण पर घूमा है जिस पर कि सूर्य ने उसके बंदी-काल में यात्रा की है—इस घटना मे ४१ अक्षांश (degree) था। वह ऐसा ही करेगी, चाहे उसकी यात्रा सीधे सूर्य को तरफ रही हो; या सूर्य के विरुद्ध मार्ग की ओर या प्रकाश के किसी विशेष कोण पर। कृत्रिम घोसलों मे प्रकाश आने के मार्ग को बदलकर चींटियों को पूर्ण रूप से धोखा दिया जा सकता है। प्रत्यक्ष रूप मे ऐसा देखा गया है कि जिस दिन बदला रहतो है उस दिन चींटियाँ प्रायः उसी ओर अपने को अधिक प्रदर्शित करतो हैं जिस ओर आकाश अधिक तीव्रता के साथ प्रकाशित होता है। किन्तु इस सबन्ध मे और भी अधिक परीक्षणों की अवश्यकता है।

अततोगत्वा चींटियो मे किसी न किसी प्रकार की दूरी की चेतना का होना आवश्यक है, क्योंकि कुछ समय तक बदी रक्खे जाने के पश्चात जब किसी चींटी को धोखा देकर उसके घर जाने का गलत मार्ग दिखा दिया जाता है तब वह थोडी दूर चलकर अपनी सीधी और दृढचित्त यात्रा पर रुक जाती है। यदि वह अपने घर की ओर सीधी चली जाती तो वह अपने बिल के अडोस-पड़ोस पहुँच जाती परन्तु अब वह प्रत्येक ओर घूम कर अपने बिल का मार्ग खोजना प्रारंभ करती है। प्रत्यक्ष रूप से यह सामर्थ्य सजातीय सौन्दर्य-शास्त्र (Kinaethetic) या पेशियों को चेतना का सदुपयोग करने पर निर्भर करती है और उसका टाँगों की गति की संख्या बहुतांशों में निश्चित रूप से

निर्धारित होती है। यह बात पक्की है कि इस तरह की ही यंत्र रचना चूहों या अन्य जीवों की उस शक्ति के मूल में होती है जिसके द्वारा वे किसी भूल-भुलैया का रहस्य समझते हैं। चाहे कोई भी उचित यंत्र काम करता हो, किन्तु इसमें तनिक भी संदेह नही है कि अनेक जीवधारियों मे आप से आप काम करने वाला पैदल चलने की दूरी को नापने का एक यंत्र (Padometer) अवश्य होता है जो उनकी शारीरिक सजावट का एक अंग होता है।

चींटियों की बुद्धि की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। इनमे से बहुतों में परीक्षा तथा भूल की गंध आती है या असाधारण परिस्थितियों के कुछ-कुछ अनुकूल बनाने की स्वयंभू-प्रवृत्ति की झलक दिखाई देती है। जिसे वास्तव मे बुद्धि कहते हैं, उसका तनिक भी दर्शन नहीं होता।

अपने माप दंड से नापने पर हमें यह प्रतीत होता है कि कुछ चींटियाँ निस्संदेह बड़ी मूर्ख होती हैं। लार्ड आवेबरी ने यह मालूम किया कि जिन छोटी चींटियों को उन्होंने क़ैद मे रक्खा था वे एक इंच का आठवाँ भाग ऊँचा मिट्टी का ढेर बनाना भी न सीख सकीं जिस पर चढ़कर व शहद प्राप्त कर सकतीं, जिसे उन्होंने सूंघ लिया था और देख भी लिया था किन्तु वह तनिक ही उनकी पहुँच के परे था। इसी तरह के अनेक सरल तथा बिना बुद्धि के काम करने में भी वे असमर्थ रहीं, जिनके द्वारा उन्हें भोजन प्राप्त हो जाता और वे अपने कीट-डिम्बों तक पहुँच जातीं।

इसके विपरीत ड्राइवर चींटियों के कुछ विश्वसनीय वर्णन मिलते हैं, जिनमें कहा गया है कि वे छोटे-छोटे नालों का पुल बाँध लेती हैं और वह इस प्रकार से कि प्रत्येक श्रमिक एक टहनी को

पकड लेता है फिर वे पानी के आर-पार एक जीवित लड़ी-बंद पुल बना लेती हैं जिस पर चढ कर शेष सेना पार उतर सकती है। "बेट" महोदय ने स्वय लिखा है कि दक्षिण अमेरिका मे कुछ चीटियों ने एक ट्राम की पटरी के आर पार कैसे अपना मार्ग बनाया था और जब उनकी एक बडी सख्या ट्राम से कुचल गई तब कैसे उन्होंने पटरी के नीचे सुरंगे बनाई थीं। जब "बेट" महाशय ने इन सुरंगों को बद कर दिया तो चींटियों ने पटरी के पार जाना रोक कर उस समय की प्रतीक्षा की जब तक कि नई सुरगे न बन गई। "फ्लूरी,' साहब ने जो कुछ देखा उसका वर्णन करते हुए कहा है कि एक वृक्ष के धड पर लगे हुए लासे के चक्कर को चींटियों के मिट्टी और पत्थर के नन्हे नन्हें कणों से पाट कर कैसे पार किया। इस कथन की पुष्टि अभी हाल मे हुई है। एक निरीक्षक ने लिखा है कि वे एक पेड़ पर लगे हुए तारकोल के घेरे मे फँस गई तो उन्होंने स्वय अपनी चींटी-गायो (Ants-Cows) से उस रुकावट को पाट दिया। ऐसी ही मुसीबत से फँसी हुई अन्य चींटियों के वर्णन मे कहा गया है कि वे फिर से पेड पर चढ गई और उसकी शाखाओं से नीचे कूद पडी, किन्तु 'लार्ड आवेबरी' की चींटियों ने आध इच की ऊँचाई से भी कूदना स्वीकार नही किया (कदाचित् उनकी चींटियाँ ऐसी जाति की थीं जिनकी दृष्टि कमजोर होती है और उनमे घुमक्कड़पने की आदत भी कम होती है।)

चींटियों की निर्माण क्रियाशीलता भी यह प्रमाणित करती है कि उनमे इतनी सीमित बुद्धि अवश्य होती है जिससे वे अपने उद्देश्य के अनुसार मार्ग ढूढ लेती हैं, किन्तु इसमे भी सदैव ही स्वयभू-प्रवृत्ति वाली नींव बनी रहती है और बुद्धि की ऊपरी रचना की अपेक्षा उसी प्रवृत्ति का अधिकतर भाग होता है।

चींटियों और स्वयं हमारी बुद्धि के बीच की चौड़ी खाई का अन्तर यह सोच कर तुरत मालूम हो जाता है कि चींटियों को कोई शिक्षा नहीं मिलती। कार्ट-डिम्ब केवल ऐसे यंत्र होते हैं जो यथा सभव शीघ्रता के साथ बढ़ते जाते है और जिनमें प्राथमिक कर्म-इन्द्रियाँ तो उपस्थित रहती है किन्तु कोई अंग नहीं होते। यदि उन्हे शिक्षा दी भी जाती जो कि नहीं दी जाती है तो भी शिक्षा से लाभ उठाने की उनकी योग्यता एक केचुए की सामर्थ्य से अधिक न बढ सकती।

इल्ले अपने कीट-कोषों में बंद रहने के कारण संसार से अलग रहते है। उनका काम यह है कि वे अपने सारे शरीर को एक असहाय कीम की अवस्था से एक छः पैर वाले पंखदार जन्तु के रूप मे परिवर्तनार्थ संलग्न रहे। अन्त मे एक बार निकल आने पर बालिग बच्चे विना किसी प्रकार की शिक्षा के अपने पेचीले कामों के करने मे जुट जाते हैं। यह बात नये बिलों के निरीक्षण और परीक्षणों से देखी गई है। वे अपनी जाति के उपयुक्त भोजन ढूँढते, उचित प्रकार के घोंसले वनाते तथा एक विशेप ढग से बच्चों का पालन-पोषण करते है। अभ्यास के परिणाम स्वरूप वे उन्नति भी कर सकते है अथवा आवश्यकता और अनुभव के द्वारा मजबूरन नई आदते भी उनमे आ सकती हैं। किन्तु कोई ऐसा मार्ग नहीं दिखाई देता जिनके द्वारा वृद्ध-श्रमिक बच्चे-श्रमिकों को अपनी परंपरा की परिपाटी की सूचना दे सके, और सत्य ही ऐसा कोई मार्ग तो है ही नहीं जिसके जरिए उक्त सूचना किसी नये घोंसले तक पहुँचाई जा सके। शिक्षा और परंपरा की परिपाटी के सबन्ध में सबसे उच्च प्रकार के सामाजिक कीड़े-मकोड़े भी कुत्ते सरीखे स्तनपायी पशुओं की तुलना मे बहुत नीचे होते हैं।

समस्त चीटियां असाधारण रूप से स्वच्छ जीव होती है। वे केवल अपने शरीर ही को साफ-सुथरा नहीं रखतीं बल्कि उनकी सामाजिक प्रकृति शृंगार के सम्बन्ध मे उन्हे परस्पर एक-दूसरे की सहायता करने को उत्साहित करती है। "मेक कुक" महाशय कुकुरमुत्तो का बाग लगाने वाली "अट्टा" नामक चींटी के कार्य के सबन्ध मे कहते हैं :—"हमने चींटियो का एक जोड़ा ले लिया, साफ करने वाले ने चहरे से काम प्रारंभ किया और उसे खूब चाटा, यहाँ तक कि नीचे के जबडे तक को साफ कर दिया...। चेहरे के बाद सफाई करने वाले ने वक्षस्थल की देख-भाल करनी शुरू की और उसके बाद वह कूले की ओर झुका, फिर पहली अगली टॉग साफ की, उसके बाद दूसरी तथा तीसरी आदि, तत्पश्चात् उदर पर पहुँची और वहाँ से दूसरी ओर से चढती हुई सर पर ···। इस सारे समय मे जो चीटी साफ की जा रही थी उसकी दशा उसी प्रकार पूर्ण सतोषयुक्त थी जैसी कि एक घरेलू कुत्ते की होती है जब कि हम उसकी गर्दन खुजलाने लगते है। चींटी अपने अगो को फैला देती है और जब उसका मित्र एक अंग के पश्चात् दूसरे अग को साफ करने लगता है तब वह मृदुता तथा लोच के साथ अपने सफाई करने वाले के हस्त व्यापार के हेतु निज को सौप देती हूँ। धीरे से वह अपनी पीठ के बल लेट जाती है ····· और अपने अगो को ऐसा ढोला कर देती है मानो वह अग-समर्पण की साक्षात मूर्ति बन गई है · ···। मैने देखा है कि एक चीटी दूसरी के सामने घुटनों के बल बैठ गई और झुककर उसके मुँह के सामने अपना सर बढा दिया तथा बिना हिले-डुले शात पडी रही··· ····। अतः इस प्रकार उसने साफ किये जाने की अपनी सहमति को प्रकट कर दिया। मैं तुरन्त ही उसके सकेत को समझ गया और जिस चीटी से

प्रार्थना की गई थी वह भी प्रार्थी का भाव जान गई क्योंकि शीघ्र ही वह अपने काम मे जुट गई।

उच्च कोटि के अन्य कीडे-मकोड़ों की तरह चींटियों को भी नींद की आवश्यकता होती है। नींद का प्रदर्शन या दौरा दिन के किसी भाग मे आ सकता है और जिन जातियों में समय निर्धारित कर दिया गया है उनमे निद्रा-काल की सीमा औसतन तीन घंटे के करीब होती है। जमीन के किसी गड्ढे को वे अपने निद्रा-स्थान के रूप मे चुन सकती हैं और अपने शरीर की ओर अपनी टाँगे घसीट कर वहीं लेट सकती हैं। सो जाने पर, चाहे उन्हे हल्की चाट पहुँचाई जाय या गुदगुदाया जाय, वे जागती नहीं किन्तु तेज चोट से वे तुरन्त जाग उठती है। जब वे स्वाभाविक रूप से जागती हैं तब उनका व्यवहार स्तनपायी पशुओं के समान या हम अहंकारी पुरुषों से मिलता-जुलता होता है। पहले तो सर फिर छहों टाँगे खूब पसार दी जाती है और बहुधा उन्हे हिलाया-डुलाया भी जाता है तथा जबड़ों को ऐसे जोर से खोला जाता है जिससे हमें अपनी जमुहाई की याद आ जाती है। 'मेक कुक' महाशय न फसल जमा करने वाली अमरीका की ऐसी चींटियों का एक अति मनोरंजक निरीक्षण किया था जिनके श्रमिकों और सैनिकों के आकार मे बड़ा अन्तर था। उनका कहना है कि सैनिक बहुत देर तक सोते हैं, उनकी नींद गहरी होती है अतः उन्हें सरलता से जगाया भी नहीं जा सकता।

कुछ निरीक्षणों से यह पता चलता है कि चींटियाँ मानसिक उन्नति की उस उच्च अवस्था तक पहुंच गई जिसमें आमोद-प्रमोद के दर्शन होते हैं। साधारणतयः उनके खेल को प्रमुखता एक ही उपनिवेश के श्रमिकों की झूठी लड़ाई होती है। चींटियाँ

का व्यवहार ठीक वैसा ही होता है जैसा कि कुत्तों की लडाई के खेल खेलने मे दिखाई देता है। जैसे कुत्ते के पिल्ले एक दूसरे के पीछे दौड़ते है या जैसे बच्चे छुई-छुअव्वल खेलते हैं, वैसे ही चींटियाँ भी करती हैं।

चीटियों की साधारण आदतों का वर्णन करते हुए थोडा-सा यह कहना भी अनुचित न होगा कि मरने के बाद उनका समाज अपने मुर्दों को कैसे ठिकाने लगाता है। कुछ प्राचीन प्रकृति निरीक्षको ने परिस्थितियाँ देख कर कहा है कि चींटियों में मृतक शरीर का बाकायदा जुलूस निकाला जाता है, जिसमे श्रमिक दो-दो की कतारों मे चल कर लाशों को ले जाते है और अन्त मे अलग अलग कब्रों मे मुर्दों को दफन कर देते हैं। मालूम ऐसा देता है कि इस बात मे वस्तु स्थिति की अपेक्षा कल्पना अधिक है। किन्तु कम से कम यह विषय काफी रोचक तो है ही। बहुत-सी चींटियाँ लाशों को ठिकाने लगाने को बेहद चिन्तित रहती है और यदि वे एक छोटे कृत्रिम घोंसले में बंद होंगी तो अपने बोझ को लादे हुए बहुधा कई दिनो तक उचित स्थान की खोज मे भटका करेगी। प्रकृति मे केवल सामाजिक कूडा-घर ही साधारण मरघट का काम देता है अतः यह संभव है कि लाशे केवल कूडे का ढेर समझी जाती हैं और मुर्दों को गंभीरता के साथ गाडने की बात बिल्कुल बनावटी है। वास्तव मे यह चीटियों की अपने बिलों को स्वच्छ रखने की प्रबल प्रेरणा ही है और निस्सन्देह यह प्राकृतिक चयन के द्वारा उनमे घर कर गई है क्योंकि ऐसा करने से उनके उपनिवेश को लाभ होता है। कुछ लोगों का मत है कि दास बनाने वाली चींटियों मे अपनी जाति के मुर्दों के लिए अलग स्थान होते हैं और अपने गुलामों की लाशों के लिए दूसरे।

छठा अध्याय

चींटियों के जीवन-मार्ग

चींटियाँ मुख्यतय: पृथ्वी पर रहने वाले जीव हैं, यद्यपि उनमें से कुछ अप्रधान रूप से वृक्षों पर जीवन विताने लगी है। हालाँकि वे सारे भू-मंडल पर फैली हुई है किन्तु ये विशेष रूप से शुष्क और मरु प्रदेशों में निवास करने वाली होती हैं। रचना मे अकेली रहने वाली एक प्रकार की वर्रों से उनके निश्चित सम्बन्ध के प्रमाण मिलते है और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि पृथ्वी मे बिल बनाने वाली ऐसी ही बर्रों से उनका विकास हुआ है जिनके श्रमिकों ने पंख रहित हो जाने पर सामाजिक जीवन ग्रहण कर लिया, किन्तु उनके जननेंद्रिय आकार-प्रकार मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मरुभूमि मे उनकी अधिकता इस वात का सकेत करती है कि पहले-पहल यह विकास पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध के एक दीर्घ-कालीन उष्ण युग मे हुआ था।

प्रारम्भ मे सभी श्रमिक निस्सदेह एक ही से थे और रानियों से उनमें कोई विशेष विभिन्नता न थी, किन्तु भूभाग में रहने के कारण और क्रमशः सामाजिक विशेषता प्राप्त कर लेने से वर्र और मधु-मक्खी की अपेक्षा चींटी-नपुंसक रानी से अधिक भिन्न हो गये। इसी समय मे उपनिवेशों का औसत आकार भी निस्संदेह बढ़ता गया।

आज कल चींटियों के सात उप-परिवारों का अस्तित्व माना जाता है। इनमे से "धानराइन्स" जाति की चींटियाँ सबसे प्राचीन हैं। इस उप-परिवार तथा अन्य दो पुरातन उप-परिवारों में नपुंसक लगभग उतने ही बड़े होते हैं, जितनी

बडी रानी होती हैं और इनमे श्रमिकों की एक से अधिक किस्म: कभी नहीं होती। शेष चार उप-परिवारों के नपुंसक बहुधा चार उप-जातियों में विभाजित किये गये हैं। यह आवश्यक- नहीं कि सभी ने हमेशा ऐसा ही किया हो। इन उप-जातियों के आकार-प्रकार दोनों ही मे अन्तर होता है। बडी जाति के नपुंसकों के सिर और जबड़े औरों की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं। ये वड़े व्यक्ति सिपाही होते हैं और साधारणतय: अपने नाम को सार्थक करते हुए अपने उपनिवेश के रक्षकों का काम करते है। किसी-किसी जाति मे वे कठोर बीजों और कीडों को चूर्ण करके मास रखने के भंडार मे सहायता करते हैं। यदि वे ऐसा न करे तो साधारण श्रमिक के छोटे आकार और दुर्वल जवड़ों से यह कार्य होना असम्भव हो जाय। मालूम ऐसा देता है कि आदि रूप मे नपुंसकों के नमूने क्रमानुसार उतार-चढ़ाव से एक श्रेणी मे उत्पन्न होते हैं। बाद मे बीच के आकार (और कभी-कभी सबसे छोटे भी) गायब हो सकते है तथा शेष मे अलग-अलग निश्चित रूप से वढ़ी हुई श्रमिकों और सिपाहियों की दो उप-जातियाँ रह जाती हैं। ऐसा भी हो सकता है कि बड़े और मँझोले आकार के सब नमूने विलीन हो जायँ और केवल सवसे छोटे श्रमिक बच रहे जो घोसले का सारा काम चलाये।

इसके अतिरिक्त रानी और नर जातियाँ दोनों ही उप- जातियों मे विभाजित हो सकती हैं अर्थात् पख-हीन और पंख- सहित आकार उत्पन्न हो जायेगे। इनमे भी आगे चल कर अधिक विकास होने पर मौलिक पंख सहित नमूने का शमन हो सकता है; तब केवल पख रहित उत्पादक जाति रह जायेगी।

सबसे उच्च कोटि के दो उप-परिवार हैं, जिन्हें "मिरमी साइन्स" और "फारमी साइन्स" कहते हैं। इनके अतिरिक्त और किसी भी प्रकार की चींटियाँ कदाचित् मुश्किल ही से उष्ण या अर्ध उष्ण प्रदेशों के बाहर जा सकी है, किन्तु ये जातियाँ उत्तरीय समशीतोष्ण प्रदेश में अधिकता से पाई जाती हैं।

प्राचीन उप-परिवारों मे दूसरे जीव तथा विशेष कर कीड़े-मकोडे ही चींटियों का भोजन होते है। अतः चींटियाँ और मनुष्य दोनों ही शिकारी के रूप मे अपना-अपना जीवन प्रारभ करते हैं। चींटियों के समूहों मे से एक ने जिसे 'डोरी लाइन्स' कहते है और जो ड्राइवर वाले सैनिक दल के नाम से प्रसिद्ध है इन्होने आखेट को एक उच्च शिखर पर पहुँचा दिया है। इनके स्थिर घोंसले नही होते किन्तु वे बड़े-बडे दलों में सारे देश पर आच्छादित रहती हैं। इन दलों मे बहुधा लाखों ही श्रमिक होते है, जो सब के सब अंधे तथा महा भयंकर होते है जो जन्तु उनके सामने से भाग नही जाते उन्हें डकार जाने मे विलम्ब नहीं करते। अन्य चींटियों के अनेकानेक घोंसले अक्सर इनका शिकार बन जाते हैं।

उच्च कोटि की चींटियों के अनेक वंशों ने आखेट करना छोड़ दिया है और वे चरवाहे का जीवन व्यतीत करने लगी है। वे सीधे-सीधे या परोक्ष रूप से पौधों के रस पर निर्वाह करती है। कुछ थोड़ी सी अवस्थाओं मे यह "मधु-तुषार" पौधे अपनी विशेष टहनियों या पत्तियों के मधु निकालने वाले भाग से इस प्रत्यक्ष अभिप्राय से निकलते हैं कि चींटियाँ उनकी ओर आकर्षित हो आवे। इससे होता यह है कि काँटो या कटु रस की अपेक्षा यह मधु-तुषार ही उन पौधों को अपने भक्षकों से

बचाये रखने मे मदद करता है। किन्तु अधिकतर अवस्थाओं में चींटियाँ उस विशेष प्रचुर-सचय से लाभ उठाती हैं जिसको भिन्न-भिन्न प्रकार के छोटे-छोटे रस चूसने वाले कीडे-मकोडे उपस्थित कर देते हैं—जैसे वृक्ष-जोंक, तराजू के आकार के हानि-कारक कीड़े (Scale insacts), पत्तियों पर फुदकने वाले कीडे (Leaf hoppers) आदि-आदि। ये नाशक जीव इस मीठे घोल का केवल एक अंश मात्र ही उपयोग मे लाते हैं, जिसे 'वे सारे दिन अपनी तेज़ सूँड से पिया करते है, बाकी उनकी गुदा से निकल जाता है। चींटियाँ जो मितव्ययिता का आदर्श होती है, इस व्यर्थ की बर्बादी को सहन नही कर सकतीं। वे या तो इस निकाले हुए "मधु-तुषार" को पत्तियों की सतह पर से चाट लेती है या इन कीडों को अपने मुँह के स्पर्श अनुभव करने वाले बालों से थपथपा कर "दुह" लेती है। अन्तिम बात यह है कि चींटियों की कुछ जातियाँ वास्तव मे इन चींटो-गायो को पाल लेती है और, कुछ विचित्र ढग से मधु-तुषार को सूखा-काल के लिए जमाकर लेती है।

'मिरमी साइन्स' जाति की कुछ चींटियों ने चरवाहे का जीवन छोड़ दिया है और वे खेती-बारी मे लग गई है। जिन चींटियो का फसल जमा करने वाली चींटियो के नाम से पुकारा जाता है, उन्होंने एक मध्य मार्ग ग्रहण कर लिया है। व घासों के बीजों को सग्रह करती है और उन्हे व्यवस्थित खत्तियो मे जमा करती है, यद्यपि पुराने विश्वास के विरुद्ध यह जरूर होता है कि वे नई फसल के लिए कभी बीज नही बोतीं, और इसी लिए उन्हे पूर्ण रूपेण किसानों की प्रतिष्ठा प्राप्त न होनी चाहिए। किन्तु इसी उप-कुटुम्ब के कुछ वंश वास्तविक बागवानी का व्यवहार करते हैं। वे अपने भोजन के लिए मधुरिका (कुकुर-मुत्ता)

बोती हैं और अपने शाकों के खेतों की बाढ़ तथा उपज की देखभाल वैसी ही तत्परता से करता हैं जैसा कि कोई मनुष्य माली कर सकता है।

अन्त में यह भी निशाने को लक्ष्य से बाहर मारने की विचित्र बात है कि 'उनमे चोर, ग़ुलाम बनाने वाली और परजीवी चींटियाँ होती हैं तथा इन्हीं बातों मे विशेषता प्राप्त होने के कारण उनका पतन होता है। कुछ चींटियाँ ऐसी होती है जो कभी-कभी डाका डालती है तथा कुछ लगातार चोरी करती रहती है और कुछ नीच वृत्ति की पर-जीवी हाती है। "फारमी साइन्स' और 'मिरमी साइन्स" दोनों ही प्रकार की चींटियों मे जो प्रथा पहले ग़ुलाम बनाने के रूप में प्रारम्भ हुई थी उसने विकसित होकर परजीवीपने का एक सूक्ष्म रूप धारण कर लिया है। कुछ ऐसी होती है जो क्षणिक समय के लिए दास बनाने का काम करती हैं। दूसरी ऐसी होती हैं जिन्हें अपना सारा जीवन ग़ुलामों के साथ व्यतीत करने की आवश्यकता रहती है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी होती है जिनकी श्रमिक जाति बिल्कुल लुप्त हो गई है और जिनकी रानियाँ तथा नर सब के सब अपने दासों पर केवल पर-जीवी बनकर रहते हैं।

यह मानने के लिए कोई भी कारण नहीं है कि आगामी भूतत्व विद्या विपयक काल में चींटियों के नमूने उतने ही भले प्रकार से वृद्धि नहीं प्राप्त करते रहेगे जैसी कि उन्होंने भूतकाल मे की है। नमूने के तौर पर, भू-संबन्धी जीवन मे नितान्त कार्य क्षमता से वह एक निश्चित कमी की पूर्ति करती हैं। निस्संदेह कुछ थोड़ी-सी जातियाँ मनुष्य के द्वारा निर्मूल कर दी जायेंगी, जो कुछ तो जान-बूझ कर और कुछ खेती तथा मनुष्य के अन्य काम-काजों के परिणाम स्वरूप। किन्तु समष्टि रूप से, अपने

छोटे आकार, पृथ्वी के भीतर रहने के अपने स्वभावों, और अपने को यथा काल व्यवस्था के अनुसार बना लेने की क्षमता के कारण, उनकी रक्षा होगी। नई जातियाँ और जीवन-निर्वाह के नये ढग निस्सदेह अस्तित्व में आयेगे, किन्तु स्वय नमूना अवश्य ही निर्बाध गति से बना रहेगा। यह प्राणिशास्त्र संबन्धी सामाजिक जीवन की उस सफलता का साक्षी होगा जो कीडे-मकोड़ों की रचना के यंत्र की कार्य क्षमता का सदुपयोग करती है। यह नमूना अपनी दृढ और विस्तृत स्वयभू-प्रवृत्तियों के द्वारा थमा रहेगा।

चींटियों के विकाश के इस संक्षिप्त वर्णन के पश्चात् अब हम चींटी-जीवन के कुछ उन वास्तविक चित्रों की ओर आते हैं जो हमें पृथ्वी के समस्त छोटे प्राणियों मे से इस महान विचित्र जीव की भिन्न-भिन्न जातियों मे देखने को मिलते है।

सातवाँ अध्याय

बागवान-चींटियाँ

चीटियों के एक वंश का नाम 'अट्टा' है। यह बागवान चींटियों का मुख्य वंश है। यह अमरीका के दक्षिणी टेक्सस के जंगलों मे पाई जाती है। वहाँ कभी कभी इन चीटियों के जुलूस देखे गये है। जो सौ सौ गज या इससे अधिक दूर तक एक खूब चालू पगडडी ही पर चलते रहते है।* जो चींटियाँ एक

*मैंने "उन्नाव-जेल" मे देखा है कि यदि चींटियों के चालू मार्ग पर एक लकीर खींच दी जाय तो वे वहाँ आकर रुक जाती हैं और इधर उधर से दूसरे मार्ग बनाने का प्रयत्न करती हैं परन्तु थोड़ी देर बाद भली-भाँति देख भाल कर लेने के बाद उसी मार्ग को ग्रहण कर लेती हैं।

तरफ जाती हैं उनके मुँह खाली होते हैं, वे मार्ग के एक ही ओर चलती हैं; जो दूसरी तरफ जाती हैं वे मार्ग की दूसरी ओर रहता और हरी पत्ती का एक टुकड़ा मुँह में दबाये चली जाती है। बहुधा पत्ती का टुकडा इतना बड़ा होता है कि वह उस चींटी को ढक लेता है जो उसे लेकर चलती है। इसीलिए इन चींटियों का नाम "छत्ते वाली" चींटियाँ पड़ गया है। जो श्रमिक पत्तियाँ नहीं लिए होते वे पेड़ों के ऊपर चढते चले जाते है; वहाँ पहुँच कर वे अपने जबड़ों से अपने हरे "छाते" काट लेते हैं; तथा वहाँ से लौट कर या तो उन्हें अपने घोंसलों मे ले जाते हैं या एक-एक करके जमीन पर गिराते जाते हैं ताकि नीचे उपस्थित रहने वाला दूसरा दल उन्हे चुन-चुन कर उठा ले जाय। इनका घोसला कहीं-कहीं बड़ा विस्तृत होता है। कोई-कोई तो सचमुच भू-गर्भ का एक नगर ही-सा होता है, जिसकी खोद कर निकाली हुई मिट्टी का ढेर दस या बीस फुट तक की चौड़ाई का होता है। ब्रेजिल की छाते वाली चींटी 'अट्टा सेक्स डेन्स' के साधारण टीले की मिट्टी २६५ घन मीटर (एक मीटर = ३९॥ इंच) तक पहुँच जाती है जो तौल में कई सौ टन होती है और जिसके भीतर ५ लाख व्यक्तियों को शरण मिल सकती है।

'अट्टा' के नपुंसकों के शरीराकारों में बड़ा अन्तर होता है। एक ओर तो बड़े-बड़े सिर वाले सिपाही होते हैं, फिर उनसे उतर कर बड़े, मंझोले और छोटे श्रमिक होते हैं, और दूसरी ओर नन्हे-नन्हे 'मिनमी' नामक अति सूक्ष्म प्राणी भी होते हैं। सिपाही घोंसले की रक्षा करते हैं और बड़े तथा मझोले दलों की निगरानी भी करते हैं तथा ये बड़े, मझोले दल पत्तियों को खुथरने का काम करते हैं।

घोंसलो मे इन पत्तियो के टुकडो के और भी छोटे-छोटे टुकडे किये जाते हैं और उन से धरती के भीतर वाले कमरों के फर्श पर क्यारियाँ बनाई जाती है। इन कमरो को श्रमिक या सेवक पहले ही से खोद कर तैयार कर रखते है। ये क्यारियाँ सबसे छोटे श्रमिको के सुपुर्द कर दी जाती हैं, जो धरती के भीतर ही काम किया करते है, यद्यपि वे कभी-कभी प्रकाश और हवा मे खेलने के लिए बाहर आ जाते हैं। सड़ी हुई पत्तियो की क्यारियों मे 'मधुरिका' या कुकुरमुत्ते का एक श्वेत जाल-सा उग आता है। छोटे-छोटे श्रमिक इसकी देख-भाल करते हैं और किसी अज्ञात विधि के द्वारा उसका इस तरह से पोषण करते हैं कि उसके रेशों से छोटे-छोटे गोलाकार उभारो के गुच्छे उत्पन्न हो जाते हैं। इन सूक्ष्म श्वेतपात-गोभियों के सिरों को चींटियाँ खुथर लेती है और उन्हे स्वय अपने तथा अपने बच्चो के लिए मुख्य भोजन के रूप मे प्रयोग करती है। मालूम देता है कि चींटियाँ अपने बाग मे उचित मात्रा मे वायु के आवागमन की पर्याप्त चिन्ता रखती है और "बेट्स" महाशय का कहना है कि गरमी और नमी की नई परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार वे उन असख्य छेदों को खोलती और बद करती रहती हैं जो कुकुरमुत्तो के कमरो की ओर बाहर की सतह से आते है। वे इस बात की भी चिन्ता रखती है कि यदि पत्तियाँ अधिक गीली हों तो वे उन्हे भीतर न लाकर प्रवेश द्वार पर सूखने को छोड़ दें। कुकुरमुत्तो की क्यारियों के लिए घास प्रत्यक्ष रूप से अनुपयुक्त होती है तो भी देखा गया है कि चींटियाँ कभी-कभी घास के छोटे-छोटे टुकड़े अपने घोंसले में ले जाती है, किन्तु सदा कुछ समय के पश्चात् इन्हे पुनः निकाल कर बाहर फेंक दिया जाता है।

"अट्टा" वंश की प्रत्येक जाति एक भिन्न प्रकार के कुकुरमुत्तों को उपजाती है और इससे भी अधिक विचित्र बात यह है कि यदि घोसले में किसी अन्य प्रकार का कुकुरमुत्ता उगना आरम्भ हो जाता है तो उसे निराकर बाहर कर देती हैं। कुकुरमुत्ते के छाते चींटियों की बागबानी की ठीक वैसी ही कृत्रिम उपज है, जैसी कि अच्छे सफेद 'एसपरेगस' के डंठल उस सेवा या व्यवहार का परिणाम हैं जो वे पौधे मनुष्य से प्राप्त करते हैं। जब कुकरमुत्ते प्रयोगशाला में बोये जाते है तो वे छाते नहीं उपजाते। वास्तव मे 'एसपरेगस' की अपेक्षा उनमे अधिक परिवर्तन हो जाता है 'क्योंकि कुकुरमुत्तों के (fungus) तो सचमुच नियमित गगन-धूलि (कुकुरमुत्ता-श्रेणी) mushroom के "अंडजाल" ही हैं। जब तक चींटियों की खेती का काम चलता है, तब तक पुष्पित होने वाले (mushroom) गगन-धूलि कभी प्रकट नहीं होते, किन्तु त्यागे हुए घोंसलों में वे कभी-कभी निकल पड़ते हैं। कुकुरमुत्तों की कुछ विशेष जातियों को 'एटी साइन' चींटियों ने घरेलू बना लिया है। इनमें से एक वह भी जाति है जो गगन-धूलि से बिल्कुल सम्बन्धित नहीं है किन्तु वह खमीर से अधिक मिलती-जुलती है।

यह संभव है कि अट्टा श्रमिक अपने बागों में स्वयं अपने मल की खाद डालते हों। इनसे संबंध रखने वाली कुछ जातियाँ है जो पत्तियों की जगह भिनगों (Caterpillor) तथा अन्य कीड़ों के गोबर को कुकुरमुत्ते के नीचे के तल में आधार स्वरूप इस्तेमाल करती हैं। अन्य जातियाँ कुकुरमुत्ते की क्यारियों को छतों पर से लटका देती हैं।

एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश में बहुमूल्य कुकुरमुत्तों को ले जाने का काम रानियों के द्वारा होता है। समस्त चींटियों

के मुख के अग्रभाग में एक थैली होता है, जिसे गाल के नीचे की (infra-buccal) जेब या थैली कहते हैं। साधारण चींटो मे जबड़ों से चबा लेने के पश्चात् भोजन के जो अधिक ठोस टुकड़े बच रहते है वे पहले-पहल इस थैली में भर लिए जाते हैं और चींटियों के शृंगार की झाड़न-झूड़न भी वहीं पहुँच जाती है, जो कि एक प्रकार की विचित्र बात है। यह झाड़न-झूड़न चींटो की टाँगों और स्पर्श अनुभव करने वाले मुँह के बालों पर से उनकी अगली टाँगों के द्वारा एक आमने-सामने वाली कंघा की तरह झाड ली जाती है और शेष शरीर से चींटा की स्वच्छ जिह्वा द्वारा चाट ली जाती है। थैले की गोली लार से गीली हो जाती है लार को जो भोजन मिलता है उसको वह गला देती है और जब उसका एक निश्चित आकार बन जाता है तब वह बाहर निकाल कर फेंका जाता है। इस तरह से कोई भी तरुण चींटी सिवाय तरल पदार्थों के और कोई वस्तु अपने गले के नीचे नहीं उतारती।

थैली को छाते वाली चींटियाँ नये घोंसलों में कुकुरमुत्ते का संचारण करने के काम में लाती हैं। वैवाहिक उड़ान के लिए अपना घोसला छोडने के पहले कुमारी रानी सचमुच खूब पेट भर कर कुकुरमुत्ते का भोजन कर लेती है। Mycelium 'अंड-जाल' के रेशे, जिनमे प्रत्यक्ष रूप से थोडा पत्तियों का बुरादा मिला रहता है, गले के नीचे की थैली में बन्द हो जाता है। संयोग करने (जोडा खाने) के पश्चात् वे अपने पंख गिरा देती है और धरती के भीतर अपने भावी घोंसले के प्रारंभिक स्वरूप के लिए एक छोटी-सी कोठरी बना लेती है और फिर इसके बाद फ़र्श पर अपने मुँह से गोली उगल देती हैं। कुकुर-मुत्ता वास्तव में उगने लगता है और रानी बड़ी ही देख-भाल

के साथ उसकी सेवा करने लगती है। वह उसमे अपने मल को खाद डालती है और कभी-कभी स्वयं अपने कुछ अण्डों को तोड़ डालती है ताकि वे विशेष खाद के काम आवे। वे बाग को दूसरे अण्डों के लिए घोंसले के रूप में प्रयोग करती है; इनसे कीट-डिम्ब (larvae) निकल पडते हैं, वे कुकुरमुत्तों को खाते हैं और श्रमिक वन जाते हैं। यह बिना सिखाये ही कोठरियों को खोद कर निकल पड़ते हैं, पत्तियों के लिए वृक्षों पर धावा करते हैं और रानी के कन्धों से अपने ऊपर बाग का कार्य-भार ले लेते हैं। इस प्रकार से एक प्राचीन स्वभाव के बहुत ही थोड़े से हेर-फेर से वह बात पर्याप्त रूप से निश्चित हो जाती है जो प्रथम दृष्टि मे हमें सरल काम नहीं मालूम देती अर्थात् नये घोंसले में कुकुरमुत्ता भाजी का पहुँचाया जाना है।

यह बात जान कर बड़ा मनोरञ्जन होता है कि अनेक प्रकार की चींटियों क उन गोलों में जिन्हे वे निकाल फेकती हैं, सदा कुकुरमुत्ते के वीज प्रायः होते ही हैं। इससे भी विचित्र बात यह है कि अधिकतर चींटियों के घोंसलों के अन्दर या उसके पास ही एक नियमित कूड़ाघर होता है और अनेक जातियों में यह आदत होती है कि वे अपने गोले इसी स्थान पर आकर निकालती हैं, ठीक इसी तरह से जैसे कि बहुत से स्तनपायी—उदाहरणार्थ 'भेड़' आदि—एक निश्चित स्थान पर अपना मल त्याग करते हैं। यह कूड़ाघर कुकुरमुत्ते की उपज के लिये उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है। वस्तुस्थिति की बात तो यह है कि 'क्रिमेटे गैस्टर' वंश की कुछ जातियों में कुकुरमुत्ते के रेशों की एक अच्छी फ़सल केवल इन कूड़ाघरों पर उगती ही नहीं है बल्कि चींटियाँ वास्तव में इसे अपने भोजन के भाग स्वरूप से प्रयोग भी करती हैं। इस प्रकार की आकस्मिक

घटनाओं से वह दशा बहुत दूर नहीं रह जाती जो वास्तविक कुकुरमुत्ता उगाने वाली चींटियो मे पाई जाती है। अतः विचारपूर्वक की हुई तरकारी की बागबानी की सी आश्चर्य-जनक कार्यवाही का भी एक सरल और समझ मे आ जाने वाला विकास हो सकता है।

फ़सल जमा करने वाली चींटियाँ

फसल जमा करने वाली चींटियों ही को देखकर हज़रत सुलेमान ने कहा था—"ऐ सुस्त आदमी चींटी के पास जा।" बहुत वर्षों तक कुछ लोगों का विश्वास रहा है कि चींटियाँ केवल अनाज को जमा ही नहीं करतीं बल्कि सचमुच वे निश्चित खेतों मे नई फसल उपजाने के लिए अनाज को बोती भी हैं। कुकुरमुत्ता उपजाने वाली चींटियों के सबन्ध मे जो बयान है उससे उपर्युक्त वात का होना सम्भव मालूम देता है (किन्तु इस व्यापार के सोचने मे यह कठिनाई प्रतीत होती है कि नई फसल के उपजाने मे घंटों और दिनों की अपेक्षा महीनों की देर लग जाती है) अतः यह बात सत्य नहीं है। ये चींटियाँ अपने घोंसले के आस-पास का एक विस्तृत क्षेत्र बहुधा साफ़ कर लिया करती हैं, और इस साफ मैदान मे कभी कभी घास उगती हुई दिखाई देती है किन्तु इसका कारण यह नहीं है कि चींटियों ने जान-बूझ कर बोआई की है बल्कि अकस्मात् वहाँ बीज गिरे और उग आये।

फसल जमा करने वाली सारी चींटियाँ मरुभूमि की अथवा अर्ध-मरु प्रदेश की रहने वाली होती हैं। वहाँ केवल इतना ही नहीं होता कि उन्हे खाने के लिए कीडे-मकोडे नहीं मिलते बल्कि वहाँ अनावृष्टि की लम्बी लम्बी अवधियाँ होती हैं जिनमें प्रायः

सक्रिय वनस्पतिक और जन्तु-जीवन दोनों ही लुप्त हो जाते हैं। इस प्रकार से चींटियाँ अपने भोजन मे बीजों को सम्मिलित करने का स्वागत करती हैं और ये बीज ऐसा भोजन भी हैं जो अनावृष्टि काल के लिए संग्रह भी किये जा सकते है। जब तक उन्हे कीड़े-मकोड़े मिल सकेंगे। तब तक वे उन्हे बड़ी ख़ुशी से तत्काल ही खा जायेंगी। इन चींटियों की अनेक जातियों मे छोटे-छोटे श्रमिकों से लेकर बडे-बड़े सिर वाले सिपाही तक बहुत मे नपुंसक हाते है। इन बडे-बड़े सर वाले सिपाहियों की रचना ठीक साधारण सिपाहियों की-सी होती है किन्तु उन्होंने अपने ऊपर एक नवीन और भिन्न प्रकार का कार्य-भार भी ले रक्खा है। बड़े और कठोर बीजों को वे अपने नीचे वाले बृहत जबडों से तोड डालते है और इस तरह से उन्हें शेष उपनिवेश के लिए सुगमता से प्राप्त होने वाला भोजन बना देते हैं।

कुछ जातियों मे जैसे कि "मिरमी साइन," "अट्टा" और थोड़ी-सी "ड्राइवर" चींटियों मे बड़े से बडे सिपाही से लेकर छोटे से छोटे श्रमिक तक उतार-चढ़ाव का एक सम्पूर्ण सिल-सिला हाता है। जब सारी पंक्ति की परीक्षा की जाती है तो यह दिखाई देता है कि भिन्न-भिन्न आकारों का अन्तर वास्तव में अनुपात का अन्तर है; जितना बडा नपुंसक होगा उतना ही बड़ा उसका सर होगा। इसके अतिरिक्त एक बात और है कि जब कभी इन आकारों के सर तथा शरीर का वज़न लिया जाता है तो यह मालूम देता है कि उनमे गणित शास्त्र का एक सरल संबन्ध है—अर्थात् सर का वज़न शेष सारे शरीर के वज़न का एक गुणनफल होता है। इसका यह अर्थ होता है कि सिर और पिंड भिन्न-भिन्न गति से बढ़ते हैं किन्तु इन गतियों में परस्पर सदा एक स्थायी अनुपात बना रहता है जैसा कि रुपये

की उन दो रकमों में बना रहता है जो ब्याज-दर-ब्याज की गति से बढ़ती रहती है।

इन घटनाओं से हमे नपुंसक चींटियों की उप-जातियों के मूल का संभाव्य संकेत मिल जाता है। कीट-डिम्बों का भोजन की जो मात्रा प्राप्त होती है उसी के अनुसार बालिग़ कीड़ों के आकार मे सदा कुछ भिन्नता होती है। सामाजिक कीड़े भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं। चित्त को आकर्षित करने वाला इसका एक उत्तम उदाहरण गर्वरहित मधु-मक्खी द्वारा उपस्थित किया जाता है। इनमे एक नये घोंसलों से पहले-पहल निकलने वाले सदस्य अपनी माता से सदैव ही छोटे होते है, क्योंकि सामर्थ्य से अधिक काम करने के कारण रानी उन्हे भोजन की अधिक मात्रा नहीं दे सकती। कभी-कभी तो ये प्रथम उत्पत्ति के जीव घरेलू-मक्खियों से अधिक बड़े नहीं होते—यद्यपि वे नपुंसक जाति के नहीं होते। समस्त चींटियों के नपुंसकों मे इसी प्रकार की भिन्नता होती हैं, दूसरों की अपेक्षा कुछ जातियों के आकार अधिक बड़े होते हैं। बहुतों मे केवल आकार का ही भेद होता है, शेष अंगों का अनुपात वैसा ही बना रहता है। इस आकार-विभिन्नता से भी लाभ उठाया जा सकता है। जो बहुत छोटे श्रमिक होते है वे घोंसले के कोमल कार्यों के लिए उपयुक्त होते हैं, जो बहुत बड़े होते है वे माल ढोने और निर्माण कार्य के भारी कामों के योग्य समझे जाते हैं; यदि लाभदायक प्रतीत हुआ तो तुरन्त दाइयों द्वारा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर ली जाती है और उन्हे आदेश-सा हो जाता है कि कुछ कीट-डिम्बों को अधिक भोजन दें और कुछ को बहुत थोड़ा।

किन्तु शरीर के सारे अंगों का एक ही गति से बढना वास्तव मे एक विशेष घटना ही है; सचमुच भिन्न-भिन्न अंग

साधारणतय: थोड़ी-बहुत भिन्न गति से बढ़ते हैं। चीटियों के जबडे उनके मुख्य अस्त्र और शस्त्र दोनों ही होते हैं। अतः यदि बड़े व्यक्तियों के जबडे भी अधिक शक्तिशाली होंगे तो आकार-विभिन्नता के लाभ भी प्रत्यक्ष रूप से बढ़ जायेंगे। शक्तिशाली जबड़ों के लिए वैसी ही उनकी पेशियों का होना भी आवश्यक है इसलिए सिर भी बडे होंगे और ऐसा होना तभी निश्चित होगा जब कि इल्लों (Pupa) के प्रौढ सिरों की प्रारंभिक बाढ़ की गति उनके शेष पिण्ड की बाढ़ की गति की अपेक्षा अधिक विस्तार से होगी। बहुत बडे अन्तर की आवश्यकता नहीं है; ऐसे सिपाहियों को उत्पन्न करने के लिए जो लगभग दानवों के समान हों शरीर की अपेक्षा सिर की वृद्धि-गति का दूने से अधिक होना कभी भी आवश्यक नहीं है।

अतः बृहदाकार सिपाही से लेकर नन्हे (Minima) श्रमिक तक के सारे समूह के लिए उनके शारीरिक विस्तार का पचासवाँ अंश दो प्रसिद्ध सिद्धान्तों के संयोग से उत्पन्न हो सकता है—अर्थात प्रत्यक्षाकार का अन्तर जो कि भोजन की उस मात्रा पर निर्भर करता है जिसे कीट-डिम्ब प्राप्त करते हैं, और शरीर के एक स्थान विशेष की वृद्धि-गति की विभिन्नता। वृद्धि-गति वंश प्रकृति से प्राप्त होती है और ज्योंही वह एक बार स्थापित हो गई फिर केवल इसी बात की आवश्यकता रह जाती है कि श्रमिक दाइयाँ बच्चों को भोजन देने मे अन्तर कर दे। चींटियों में ऐसा ही घटना-चक्र सचमुच चलता है इस सम्मति की पुष्टि इस बात से होती है कि जब कभी अकेली रानियाँ ऐसे नये घोंसले स्थापित करती हैं जिनमे अनेक सूरतों के नपुसंक होते हैं तो पहली संतति मे केवल छोटे श्रमिक ही निकलते और सिपाही कभी न उत्पन्न होते हैं। इसी कारण से मनुष्य अनुमान

कर लेता है कि विनीति मधु-मक्खी की पहली संतति भी छोटी ही होती है—क्योंकि रानी को उनके भोजन करने के लिए न तो समय हाता है और न शक्ति।

'फिडोल' वंश की कुछ जातियो मे जैसे कि 'इन्सटेबिलिस' (अनस्थिर) मे, वे सारे के सारे उतार-चढ़ाव पाये जाते हैं जिनका वर्णन अभी हमने किया है, किन्तु अधिकतर जातियों मे सिपाहियों और छोटे श्रमिकों को छोड़ कर और कोई भी नहीं होता। दाइयों के व्यवहार मे एक अधिक विशेषता आने ही से ऐसा होता होगा—अर्थात् वे अपने पालित-पोषितों को या तो खूब खिलातीं होंगी या उन्हें एक निश्चित न्यून मात्रा में भोजन देती होगी। परिणाम होता है श्रम का एक तीव्र विभाजन—यह विशेषता पूर्णतय: वैसी हो होती है जैसी कि शरीर के भिन्न भिन्न (Tissues) तन्तुओं मे पाई जाती है।

चींटी-गायें

पौधा-जूँ (Plant lice) का नाम चींटियो की गाये पहले-पहल 'लीनियस' महाशय ने रक्खा था और यह नाम बिल्कुल सार्थक भी है। पौधे-जूँ को पालने का काम कुछ चीटियो मे इस सीमा तक पहुँच गया है कि मालिक अथवा मालकिने गायों के अण्डों को शरद ऋतु (Autunm) मे एकत्रित करती हैं और सारे जाड़े भर अपने घोंसले में रक्खे रहती है, उन्हे स्वयं अपने अण्डों की भाँति सेती है और बसन्त ऋतु मे जब वे अण्डों से बाहर निकलने लगते है, उन्हे ले जाकर अपने चरागाहों मे जमा देती हैं तथा उन्हे आस-पास के पौधों की जडों, पत्तियों और तनों मे वितरित कर देती हैं। उदाहरणार्थ अमेरिका के संयुक्त राज्य की 'लेसियन्स' नामक साधारण चींटी पौधा-जूँ को बहुत दूर तक वहाँ के अनाजों की जडों पर वितरित कर आती है।

है, सो वे हिम-तुल्य-श्वेत हो जाती हैं। उनका श्वेत हो जाना स्वीकृतात्मक वरण (Positive Selection) के द्वारा नहीं होता जैसा कि हमारी गायो और घोड़ों का होता है, किन्तु प्रकाश के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अभाव से होता है। इससे भी अधिक यह होता है कि ग्वालिनों (Herd-mistresses) को अपने भोजन के लिए धरती के ऊपर आने की कभी भी आवश्यकता नहीं होती है। अतः उनका रंग बिलकुल पीला पड जाता है और वे लगभग अंधी हो जाती हैं क्योंकि उनकी आँखें नितान्त छोटी रह जाती हैं।

जैसा कि देखा गया है यह दुग्धशाला का जीवन स्वभावत ही उत्पन्न हो जाता है। यह इस घटना पर निभर है कि रस चूसने वाले कीडे उस रस का केवल थोड़ा-सा ही भाग अपने प्रयोग मे लाते हैं जिसे वे पौधे के तन्तुओ से खींचते हैं; अधिकांश भाग को ये त्याग करते रहते हैं। इस सारी क्रिया मे सबसे प्रथम काम मधुर रस को चूस कर बाहर निकालने का होता है। यह रस चींटियो के लिए विशेष प्रिय वस्तु होती है और उपर्युक्त कीड़ों के द्वारा सुलभ प्राप्त हो जाती है क्योंकि स्वयं उनक जबड़े रस-चूसने के लिए बिल्कुल बेकार होते हैं। रस को चूस कर उसे बाहर निकालने के लिए कोई दूसरी क्रिया नहीं करनी पड़ती किन्तु उसका त्याग करना वास्तव में पहले ही काम का उत्तरार्द्ध है। शीघ्रता से बूँद निकालने के लिए 'गायों' का थपथपाया जाना ही दूसरी क्रिया है। दूसरे कीड़ो को दुहने का आविष्कार करने से यह नही कहा जा सकता कि चींटियों ने विकास की ओर कोई विशेष उन्नति की है। यह बात तो वैसी ही है जैसे कि मनुष्य ने अन्य स्तन्यपायी जीवों के दुहने का आविष्कार किया है।

मनुष्य की खेती, जब वह तनिक भी ढंग से की जाने लगती है, अन्य जीव जन्तुओं के लिए बड़ी ही घातक बन जाती है। जंगल के वृक्षों को काटना, दलदलों को सुखाना, शिकारी पशुओं को मारना, अगणित ऐसे पक्षियों को निकाल बाहर करना जिन्हे आश्रय पाने और बसेरा लेने के लिए स्थान की आवश्यकता होती है, क्या ये पर्याप्त उदाहरण नहीं है ? इसी तरह से चींटियों की समस्त कार्यशीलता में उनकी दुग्ध-शाला स्थापित करने की प्रवृत्ति बड़ी ही हानिकारक है। जिन कीड़े मकोड़ों को वे रस-चूसने के काम मे बहुधा लगाती हैं और उनकी रक्षा करती हैं उनकी जातियाँ तथा संख्या इतनी अधिक होती है कि पौधों को एक भारी मूल्य देना पड़ता है और इन प्राण चूसने वाले नाशकारी जीवों से मनुष्य को अपनी खेती, फलों के वृक्ष तथा पुष्पों को पूर्ण रूपेण बचाना बहुत अंशों में व्यर्थ हो जाता है।

मधु-पात्र चींटियाँ

जिस प्रकार फसल जमा करने वाली चीटियों के लिए यह आवश्यक है कि सूखे के दिन पार करने के हेतु वे अपने भोजन के लिए बीजों को जमा कर रक्खे उसी भाँति मरु प्रदेश की रहने वाली मधुर-तुषार भक्षी चीटियों के लिए यह ज़रूरी है कि वे भी किसी प्रकार की संग्रह-विधि ढूँढ निकालें। तरल भोजन को संग्रह करके रखना सरल काम नहीं है। मधु-मक्खी ने इस समस्या को हल कर लिया है। किन्तु एक दीर्घ-कालीन और क्रमिक विकास से शहद का छत्ता अपनी चरम सीमा को पहुँचा है। चींटियों ने इस प्रकार की संग्रह-विधि कभी ग्रहण नहीं की, अकस्मात् एक ऐसे ढक्कनदार पात्र या टोकरी का आविष्कार होना जिसके भीतर कतई हवा न जा सके, कोई सहज बात नहीं

है जब कि विकास की क्रिया मुख्यतयः स्वयभू-प्रवृत्ति के द्वारा होती रहती है। मधु-चींटियों ने इस समस्या का एक दूसरा ही हल निकाला है, जिसकी आशा हम तो नहीं कर सकते किन्तु कीडे-मकोड़ों के लिए वह स्वाभाविक है—अर्थात् वे श्रमिको मे से कुछ को स्वय सग्रह पात्रों मे परिवर्तित कर देती है। इन जीवित मधु-पात्रो मे एक अत्यन्त विस्तृत गल-स्थली होती है और चारा जमा करने वाले श्रमिक सुकाल के समय उगल-उगल कर उन्हे उस समय तक खिलाते ही रहते है जब तक उनके पेट फूल कर एक बडे गोलाकार थैले का रूप धारण न कर ले। उनके ककाल की पत्तरे अन्त मे लचीली खाल के खूब खिच जाने से एक बडे क्षेत्र मे अलग-सी हो जाती है। इनका नाम "परिपूर्ण" पड़ जाता है और वे चलने मे बिल्कुल असमर्थ हो जाते है अतः यह अपने पंजों की सहायता से विशेष प्रकार की कोठरियो की छतो मे लटके रहते है। इन कोठरियों मे ये 'जीवित बोतले' (demijohus) जिनकी गर्दन पतली और पेट चौड़ा होता है, पर्याप्त सख्या मे एक-दूसरे से सटी हुई महीनों लटकी रहती हैं। सूखे के समय साधारण श्रमिक इनके सिरों को थपथपाकर सामान्य विधि से उगलने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और इस प्रकार से उनका सारा उपनिवेश उनके वृहताकार उदरो के द्वारा जीवित रहता है।

यह व्यवस्था चींटियो के तीन उप-परिवारों मे स्वतंत्र रूप से विकसित हुई है। यह तीनो ही उप परिवार सदा मरुस्थलों मे पाये जाते हैं।

यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है कि अकेले 'फिडोले' (Pheidole) वश मे ऐसी जातियाँ हैं जो कुछ तो पूर्ण रूप से फसल जमा करने का काम करती हैं और कुछ पूर्णतयः उपयुक्त

प्रकार से मधु-तुषार संग्रह करती रहती है। यह बात नहीं ज्ञात हुई है कि ये 'परिपूर्ण' पहले ही से इस काम के लिए बनाये गये हैं और उन्हें विशेष रूप से विस्तरित होने वाली गल-स्थली दे दी गई है। अधिकतर सम्भावना तो यह प्रतीत होती है कि समस्त श्रमिकों के लिए इसका द्वार खुला होता है किन्तु उनमे से थोड़ों ही पर परिपूर्णता लाद दी जाती है।

पल्टनियाँ-चींटियाँ

जिन सैनिक या ड्राइवर चींटियों का जिक्र ऊपर हो चुका है उन्होंने अपने लुटेरे स्वभाव को चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। इन भय उत्पन्न-करने वाले जीवों मे ध्वंसक स्वयं भू-प्रवृतियाँ होती हैं। उनमे यायावर वृत्ति होती है, अर्थात् उनका स्वभाव बनजारे (घुमक्कड़ों) का होता है, उनके झुंडों की संख्या अपार होती है। इनकी लीलाएँ देख कर हमे अपने इतिहास के हूणों और तातारियो के आक्रमण का स्मरण हो आता है। किन्तु यहाँ भी मनुष्य और कीडे-मकोडों के बीच मे रहने वाले मौलिक भेदभाव प्रत्यक्ष दिखाई देते है। अति-व्यग्र मंगोल भी इस योग्य थे कि वे एक स्थान पर बस कर स्थायी एवं सभ्य जीवन ग्रहण कर ले किन्तु वंश-प्रकृति के कठोर हाथो ने ड्राइवर चींटियों का जीवन-मार्ग सदा के लिए सीमित कर दिया है। उनका बनजारापन और उनकी क्रूरता स्थायी है। वे जंगलीपन के अनन्त आक्रमण करने के लिए ही सदा घूमा करती है। उनका अन्धा होना उन्हें हमारे लिए अधिक राक्षसी बना देता है; किन्तु यह इस बात का एक अधिक उदाहरण है कि समस्त चींटियों मे देखने की शक्ति गन्ध-शक्ति के अधीन होती है। उनके नपुंसकों में प्रायः अनेक रूप धारण करने के गुण होते हैं। बलवान सैनिक सबसे बड़े शिकार पर

आक्रमण करते हैं। पगहे के बँधे हुए घोड़ों, गाय, भैंसों पर भी हमला कर दिया जाता है और उनका हवन भी होता रहता है तथा उनकी यह दशा कर दी जाती है कि दूसरे श्रमिक भी उन तक पहुंच जायं। छोटे श्रमिक भी उतने ही उग्र होते हैं और उन का यह देखना कर्त्तव्य होता है कि छोटे जीव बच कर भाग न सके। साधारणतय: नरो के पंख होते हैं किन्तु रानियाँ स्थायी रूप से पंखहीन होती है और बड़ी होकर अंडे देने वाली मशीनें बन जाती हैं तथा फूल कर कुप्पा हो जाती हैं। फुलाव में उनसे अधिक होना दीमकों की रानी मे ही देखा जाता है।

अठवाँ अध्याय

युद्ध और दासता

मानव के अतिरिक्त चींटियाँ ही एक ऐसी जीवधारी रचना है कि जो समर मे शामिल होती हैं। व्यक्तिगत कीड़े या मकड़ियाँ, मछलियाँ, चिड़ियाँ या सभी स्तनपायी जीव भोजन या अपने जोड़े के लिए अथवा बच्चा देने वाले स्थानों के हेतु एक दूसरे से लड़ते है किन्तु यह समर नहीं है। जब भेड़ियों का एक गिरोह जंगली घोडो के एक समूह पर आक्रमण करता है और आखिर सम्पूर्ण शक्ति से अपनी आत्मरक्षा करता है; तो यह समर की पहली सीढी से कुछ-कुछ मिलती-जुलती बात होती है किन्तु समर शब्द उन्हीं लड़ाइयों के लिए सीमित होना चाहिए जो एक ही जाति की या घनिष्ट रूप से परस्पर संबन्धित जातियों की सेनाओं के बीच मे होती है। चींटियों ने क्रमवार सभी प्रकार की श्रेणीबद्धता पाई है। एक ओर पल्टनियाँ चींटियों की शुद्ध लुटेरी जातियाँ हैं जिनके विरुद्ध कोई अन्य चींटी अपनी रक्षा नहीं कर सकती। इनसे उतर कर

कुछ ऐसी जातियाँ हैं जिनके आखेट कभी-कभी भयंकर रूप से अपनी आत्मरक्षा करते हैं। और यदा-कदा स्वयं भी आक्रमण कर बैठते है। दूसरी ऐसी जातियाँ भी हैं जिनकी निकट संबन्धित जातियों मे स्वभावतः युद्ध होता ही रहता है और अन्त में वे जातियाँ हैं जिनकी एक ही जाति के विविध घोंसलों के बीच संग्राम हुआ करता है।

चीटियों की सामरिक क्रियाशीलता की सबसे अधिक प्रसिद्ध वे कार्यवाहियाँ हैं जिनका संबन्ध गुलाम बनाने वालों के उन धावो से होता है जो वे अपने नातेदारों के घोंसलों पर इसलिए करते है कि उन के इल्लों (Pupa) को चुरा कर गुलामों की तरह पालें। गुलाम बनाने के साथ साधारण जीवन-शास्त्र का वर्णन आगे है, यहाँ पर तो केवल उनके शुद्ध सामरिक रूपों का ही विचार किया गया है।

अधिक शान्तिप्रिय जातियों से अकेले-दुकेले श्रमिक भोजन के लिए जासूसी किया करते है, भोजन-सामग्री का पता लग जाता है तब भेदिए अपने घोंसले पर लौट आते हैं। इसके बाद अन्य श्रमिकों की एक अपार संख्या खाद्य पदार्थों को हडप करने के लिए निकल पड़ती है ; ठीक इसी तरह से गुलाम बनाने वालों के गुप्तचर आक्रमण करने के लिए भी उपयुक्त घोंसलों को ढूँढ़ने के लिए निकल पडते है; और जब वे सफल होकर लौटते है तब उनके घोसले के सारे नपुंसक एक समूह मे आक्रमण करने के लिए आगे बढते हैं। "पौलीएर्गस" नामक गुलाम बनाने वाली वीरांगनाएँ, सूँघते सूँघते जब अपने शिकार के पास पहुँच जाती हैं, तो वे घनी सैन्य पंक्तियाँ (calumns) बना लेती है। इन सैन्य पंक्तियों की लम्बाई पन्द्रह फिट तक हो सकती है और चौड़ाई छः इंच तक। एक मिनट मे एक गज या इससे अधिक

की औसत चाल से यह समर-यात्रा एक घंटे तक जारी रह सकती है। मार्ग-प्रदर्शक चींटियाँ प्रत्यक्ष रूप से अपनी नासिका द्वारा सूँ-सूँ करती रहती है जिससे प्रकट होता है कि वे गुलाम जाति की गंध पाने को बडी उत्सुक है। जब उन्हें यह गंध मिल जाती है तो वे आक्रमण करने के लिए झपटती है। कुछ गुलाम जातियाँ तुरन्त भाग खडी होती हैं, दूसरी बड़े जोर से उसका मुकाबला करती हैं, किन्तु साधारणतयः उन्हें विवश होकर भागना पडता है। भागते समय वे जितने कीट-डिम्ब और इल्लों को बचा सकती है उन्हे ले जाती है और जब वीरांगनाएँ पीछे हटने लगती है तब भगाडा चींटियो मे से कुछ इसलिए उनका पीछा करती है कि कदाचित् लूट के माल मे से कुछ उन्हे वापिस मिल जाय। गुलाम बनाने वालो की लौटन वाली सैन्य पंक्तियाँ ठीक उसी मार्ग से वापस आती हैं जो उन्होंने अपनी यात्रा के प्रारम्भ मे ग्रहण किया था और इसका कारण यह है कि गन्ध ही उनका मार्ग प्रदर्शन करती है।

एक निरीक्षक ने लिखा है कि दक्षिण अमेरिका की "पौली एर्गस" नामक गुलाम रखने वाली चींटी जब फोर्मिका जाति की चींटियों पर उनके इल्लो और बच्चो को छीनने के लिए आक्रमण करती है तो अवसर पाकर ये जल्दी से घास की पत्तियों की चोटी पर चढ जाती है और इसी पर अपने इल्लों को छोड देती है, क्योंकि शत्रु-चींटियाँ भारी होने के कारण आसानी से घास पर नहीं चढ़ पाती।

'फोरल' महाशय ने देखा है कि वीरांगनाओं की एक सारी की सारी सेना अपना मार्ग भूल गई और अपना लक्ष्य प्राप्त करने मे असफल हो गई। जब मार्ग बहुत लम्बा होता है, तब यद्यपि चाहे उनकी अध्यक्षता ठीक-ठीक की गई हो, तो भी वे

लौट पड सकती है। प्रत्यक्ष रूप मे उनके इस लौट पड़ने का कारण थकावट मालूम देती है। जिस अर्थ मे मनुष्यों का नेतृत्व होता है वैसा इनमे नही होता। किन्तु बहुधा देखा गया है कि कुछ चीटियाँ उत्साह-हीन होती है और उनको आगे बढ़ाने के लिए इस बात की आवश्यकता पडने लगती है कि अधिक उत्साहयुक्त जीव उन्हे अपने स्पर्श करने वाले मुँह के बालों से थपथपाये। बहुधा मार्ग मे पड़ाव इसलिए पड जाते हैं कि सैन्य पंक्तियाँ फिर से गठ जाये. और ऐसे पडाव प्रायः उस समय दुबारा होते है जब कि सेना का अग्रभाग लक्ष्य के पास पहुँच जाता है।

एक ही घोंसले पर कई दिन तक बराबर आक्रमण जारी रह सकता है और वह उस समय तक बन्द नहीं होता जब तक यह न मालूम हो जाये कि अब वहाँ लूटने के लिए कुछ बाकी नहीं बचा है, या उक्त घोंसले के निवासी किसी दूसरे स्थान पर चले गये है। वीरांगनाओं के एक उपनिवेश का निरीक्षण एक मास तक प्रति दिन किया गया और देखा गया कि उन्होंने चवालिस आक्रमणकारी धावे किये, जिनमे से अट्ठाइस पूर्णतः विजयी हुए, नौ में कुछ इल्ले प्राप्त हुए और सात बिलकुल असफल रहे।

'फोरल' के निरीक्षण किये हुए दृश्यों मे से एक का वर्णन है कि 'फारमिका फुसका' जाति के उपनिवेश पर जब आक्रमण हुआ तो उपनिवेश के कुछ सदस्यों ने बड़ी वीरता के साथ अपने घोंसले की रक्षा की, और अन्य सदस्य अपने अधिकतर इल्ले-बच्चों को खतरे से बाहर निकाल ले जाने मे सफल हुए। परिणाम यह हुआ कि वीरांगनाओं ने आक्रमण बन्द कर दिया और लौटना प्रारम्भ कर दिया।

फुमकाएँ बड़े वेग से उत्तेजित हो गईं, और वीरांगनाओं का पीछा करने को निकल पड़ीं। वे उन्हें तङ्ग करने में इतना सफल हो गई कि जिन बच्चों को शत्रु ने पकड़ कर .गुलाम बना लिया था, उन्हें वे छोड़ भागीं। और भाग कर भी इस कारण निकल गईं कि उनकी चाल तेज़ थी। इस प्रकार की विफलता अपवाद स्वरूप है। यह घटना इसलिए घटित हुई कि आक्रमण-कारी सैन्य पंक्ति का सेना-मुख उनकी आशा से पहिले ही स्वरक्षा करनेवाली चींटियों को दिखलाई दे गया, और उन्हें अपने पृष्ठ भाग को सबके बराबर लाने में ज़रा प्रतीक्षा करनी पड़ी उस समय को 'फुमका' ने अपने घोसलों को पूर्णतयः सेना से सुसज्जित करने में सदुपयोग कर लिया।

'फोरल' महाशय ने यह भी देखा है कि आक्रान्त चींटियाँ .गुलाम बनाने वालों का उनके घोंसले तक पीछा करतीं हैं और सैकड़ों की संख्या में प्रस्थान करके व्यर्थ का आक्रमण करती है। .गुलाम बनाने वालों और .गुलाम जाति की शत्रुता साधारण शिकार की अपनी आत्मा-रक्षा की केवल एक विशेष घटना है। किन्तु .गुलाम बनाने वालों की भिन्न भिन्न जातियाँ एक-दूसरे को भयंकर शत्रु होतीं हैं, और जब उनका सामना हो जाता है, तब वे ऐसी रक्तमय और निर्दयी लड़ाइयाँ भी लड़ सकती हैं जैसी कि वे .गुलाम-जाति के विरुद्ध लड़तीं है। अन्त में उस संग्राम का नम्बर आता है जिसमे चींटियाँ मनुष्य की प्रतिस्पर्धा करता हैं। ऐसे संग्राम में समस्त योद्धा एक ही जाति के सदस्य होते हैं। 'हारवेस्टर' अर्थात् फसल जमा करने वाली चींटियाँ इस प्रकार का युद्ध करने वालों में प्रमुख मालूम होती हैं। हम लोगों की तरह उनमें भी चल सम्पत्ति ही के संग्रह से अति लोभ और संग्राम को प्रोत्साहन मिलता है। ये संग्राम पूर्ण रूप

में वैसे ही क्रूर होते हैं जैसे कि गुलाम बनाने वालों और उनक बलि चढ़ने वालों के बीच में होते है और वे अधिक दीर्घकाली भी हो सकते है। 'मौर्गारिज' ने ऐसे ही एक समर का वर्ण किया है जो पड़ोस के दो घोंसलों मे हुआ था और छियालि दिन तक चला था। 'मेककुक' महाशय ने भी तीन सप्ताह त चलने वाले एक संग्राम का निरीक्षण किया था, जो 'फिलेडेल फिया' के 'पेनस्क्वायर' मे हुआ था।

किसी पूर्व स्थापित घोंसले के अति समीप किसी नये घोंस का बनाया जाना ही समर के सामान्यतम कारणों मे से एव है; क्योंकि उसमें रहने वाली चींटियाँ, अनेक पक्षियों की तर स्थान सम्बन्धो स्वय-प्रवृत्ति प्रकट करती हैं। ऐसे भी कई अवसर आते हैं जब कि पहले से प्रेम पूर्वक और शान्ति से रहने वाले दो घोंसले, भोजन की कमी के कारण एक-दूसर के शत्रु हो जाते हैं।

चींटियों की दो जातियों का सदा पास पास घोंसलों में रहना ही उस परोपजीवीपने की पहली सीढ़ी है जिसका नाम गुलाम बनाने की प्रथा पड गया है। 'ह्वीलर' महाशय का कहना है कि "एक ही जाति की चींटियों के भिन्न-भिन्न उपनिवेश एक-दूसरे के ऐसे शत्रु हो जाते हैं कि उनका एक-दूसरे का निकटवर्ती होना ही इस बात का सूचक है कि एक जाति दूसरे का कुछ न कुछ शोषण करती ही है।"

कुछ छोटी चींटियाँ लुटेरों की तरह ऐसे निवास स्थानों में रहती हैं जो अन्य चींटियों के मार्ग या पगडंडी के समीप होते है, और वे लौटने वाले श्रमिकों से भोज्य-पदार्थ छीन लेती हैं। ऐसी घटनाएँ चिड़ियों मे भी होती हैं, उदाहरणार्थ 'स्कुआ' पक्षी 'गल' नामक चिड़िया को

अपना लूट का माल उगलने के लिये बाध्य कर देना है—इस बात का कारण ज्ञात नहीं हुआ है कि शिकार अपने ऊपर आक्रमण करने वाले पर हमला क्यों नहीं करता, कदाचित् कारण वही हो जो "रकुआ' और 'गल' मे होता है कि दोनों जातियों की प्रकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती है। दूसरी चींटियाँ जिन का आकार सदा छोटा ही रहता है स्थायी रूप से चोर होती हैं। वे अपने घोंसले बडी चींटियों के या दीमकों के घोंसलों की दीवालों ही मे बनाती है, और दोनों घरों के बरामदों को ऐसे रास्तों से सम्बन्धित कर देती हैं, जो उनके प्रयोग के लिए तो पर्याप्त रूप से बडे होते है किन्तु उनके बडे पडोसियों के लिए इतने छोटे होते हैं कि वे बदले की भेंट करने के लिए आने मे असमर्थ होते हैं। इस प्रकार के जीवन की परम अनुकूल व्यवस्था करने में 'केरेवेरा' नामक चींटी बहुत दक्ष होती है। यह दीमकों के यहाँ चोरी करती है। श्रमिक, अपनी जीवन-परिचर्या के अनुसार चीटियों मे सबसे छोटे होते है। नर और रानियाँ थोड़ा बहुत साधारण चींटो के आकार की होती है और तौल मे उनसे लगभग एक हजार गुना भारी होती है जब रानी अपनी वैवाहिक उड़ान के लिए उडती है, तो वह कुछ छोटे-छोटे श्रमिकों को अपने साथ ले जाती है, जो अपने जबडों की सहायता से उसकी टाँगों के बालों मे लटक जाते है। यह कहा जाता है और सत्य-सा भी मालूम देता है कि उपर्युक्त घटना रानी और श्रमिक के आकारों की वृहत विषमता की अनुकूल व्यवस्था ही के अनुसार होती है, क्योंकि रानी अब अपने नन्हे नन्हे बच्चों को उगल कर चारा खिलाने मे कुछ मानव अमीरजादियों की तरह असमर्थ होती है और उसे प्रारम्भ ही से नपुंसक दाइयों की आवश्यकता होती है। चींटियों के आचरण की अंधी प्रकृति के उदाहरण के सम्बन्ध

में यह कहा जा सकता है कि वैवाहिक-यात्रा के समय श्रमिक अंधाधुन्ध रूप से नरों के भी वैसे ही चिपट जाते है जैसे कि वे रानियों के चिपटते है। साथ ही यह घटना भी स्मरण रखने की है कि जो श्रमिक नर-सवारियों पर यात्रा करते है वे सब के सब बिना कोई उपयोगी कार्य-किये हुए ही मर जाते हैं।

बहुधा दुर्बल और छोटी चींटियाँ बड़ी चींटियों के घोंसले के पास रहती है। मालूम ऐसा देता है कि उनका यह काम केवल इसलिए होता है कि उन्हे अपने शक्तिशाली पड़ोसी की निकटता से अपनी रक्षा का कुछ आनन्द प्राप्त हो। बढ़ते बढ़ते यह सम्बन्ध इस निम्न कोटि की सीमा को पार कर जाता है जो एक ओर के शोषण को परस्पर की सेवा से पृथक करता है, और यह सम्बन्ध स्वयंभू-प्रवृत्ति के तल पर सच्चा मित्रता का रूप ग्रहण कर लेता है। उदाहरणार्थ दक्षिण अमेरिका के उष्ण कटिबन्ध में एक प्रकार की बड़ी और भूरी 'कम्पोनोटस' और दूसरे प्रकार की छोटी और मटमैले रंग की 'क्रिमटोगेसर' चींटियाँ सम्मिलित रूप से किसी वृक्ष पर बने हुए एक ही विचित्र घोंसले मे रहती हैं, जो पेड़ की एक शाखा के ऊपर मिट्टी थोप कर सुरंग के रूप में गोलाकार बनाया जाता है (मिट्टी के ऐसे वृक्ष-घोंसलों पर प्रायः दूसरे पौधों पर उगने वाले पौधों का एक सुन्दर 'बगीचा' उग जाता है, किन्तु मालूम ऐसा देता है कि ये पौधे केवल आकस्मिक घटना ही से उग आते हैं और चींटियों के जीवन-सम्बन्ध मे उनका कोई विशेष भाग नहीं होता)। छोटे कद की चींटी-जनता घोंसले की बाहरी तह में निवास करती है और जब कभी घोंसले पर कोई आफत आती है, तो उसके नपुंसक रक्षा करने को निकल पड़ते हैं। बड़ी जाति की चींटियाँ घोंसले के केन्द्र में रहती है और यद्यपि वे अत्यन्त

भयंकर होती है किन्तु वे केवल उस समय ही निकलती हैं जब कि खतरा गम्भीर होता है। इस प्रकार दोनों जातियों मे बिल-कुल वैसा ही श्रम-विभाजन रहता है जैसा कि एक ही जाति के श्रमिको अर्थात् छोटे-छोटे हल्की लडाई करने वाले सिपाहियो और भारी शस्त्रों से सुसज्जित बडे-बड़े सैनिको के बीच मे प्रचलित है। इस दशा मे दोनो जातियो के कुमार पृथक ही रक्खे जाते हैं और अलग ही अलग उनका पालन-पोषण होता है यद्यपि दोनो जातियो के तरुण सदस्य भोजन की खोज मे साथ-साथ घूमने में आपस की मैत्री से फौजी लाभ उठाया करते है।

'लेप्टोथोरेक्स' नाम की एक छोटे प्रकार की चींटियों ने एक क़दम और आगे बढाया है। ये अनेक मानव उपजीवियो की तरह अपने का मिलनसार और अनुकूल बना कर अपना भोजन प्राप्त करती है। 'मिरमिका' के घोसलो की दीवालो मे ये अपने बरामदे बनाती है, और 'मिरमिका' श्रमिकों से सीधे अपना भोजन प्राप्त कर लेती है। इस काम की पूर्ति वे इस प्रकार करती हैं कि पहले वे अपने यजमानों की पीठ पर चढ जाती है और फिर उनके शरीरों का और विशेष करके उनके मुख भागों को चाटने लगती हैं। इस गुदगुदाहट से मिरमिकाएँ प्रसन्न होती हुई प्रतीत होती हैं, क्योंकि अपने छोटे-छोटे नौकर-चाकरों के लिए भोजन उगलकर वे उक्त सुरसुराहट का प्रत्युत्तर देती हैं। इन लेप्टोथोरैक्स चींटियो की बिलकुल वही दशा है जो अनेक गुबरीले तथा अन्य कीड़ों की होती है, जिनका चींटियाँ अपने बिलों मे स्वागत करती हैं, और जो सेवा करने के बदले मे भोजन, निवासस्थान और सहिष्णुता प्राप्त करते हैं (इसका वर्णन अगले अध्याय मे है) वर्तमान सम्बन्ध में उनकी रोचकता इस बात से उत्पन्न होती है कि यद्यपि साधारण दशाओं में वे अपने निजी

बच्चों को अलग ही अपने स्वनिर्मित घोंसलों मे चिपकाये रखती हैं, किन्तु बिना मिट्टी वाले कृत्रिम घोंसलों में उन्हें रख कर उन को प्रोत्साहित किया जा सकता है कि वे मिरमिकाओं को ऐसी आज्ञा दे दें कि वे दोनों जातियों के अण्डे बच्चों को मिला दें। चींटियों के लचीलेपन का एक और मनोरंजक उदाहरण यह है कि यदि उन्हें एक कृत्रिम घोंसले मे रखा जाय तो कुछ समय के पश्चात् वे शहद, कीड़े-मकोड़े और भोजन की अन्य साधारण सामग्री खाने की आदत डाल लेती हैं। वैसे साधारण तौर से वे मिरमिकाओं के सामाजिक उदरों की उत्पत्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं खातीं।

ग़ुलाम बनाने की वास्तविक प्रथा को 'फोरमी साइन' और 'मिरमी साइन' चींटियों ने स्वतंत्र रूप से विकसित किया है। सौ वर्ष से ऊपर हुए जब इस बात को छोटे 'ह्यूबर' ने 'फोर-मिका सेंग्वीनो' नामक ग़ुलाम बनाने वाली लाल चींटी में देखा था। 'फोरमिका फुसका' नामक अपनी काली सजातीय को ग़ुलाम बनाने के लिए उसके घोंसलों पर आक्रमण करने के स्वभाव का जीव शास्त्र सम्बन्धी पूरा-पूरा अर्थ लगभग सौ वर्ष पीछे उस समय भले प्रकार समझा गया, जब "व्हीलर" ने रानियों के स्वभाव में उसका संकेत पाया। अन्य चींटी रानियों की अपेक्षा वह इस बात मे कम स्वतंत्र होती हैं कि वह स्वयं अपने उपनिवेश को स्थापित कर सके। वैवाहिक उड़ान के सफलतापूर्वक सम्पूर्ण होने के पश्चात् वह या तो स्वयं अपनी जाति के पूर्व स्थापित किसी घोंसले में चली जाती हैं या 'फोरमिका फुसका' के घोंसले में—पिछली दशा में वह इल्लों का एक ढेर जमा कर लेती है और उन श्रमिकों को मार डालती है जो अपनी सम्पत्ति को वापिस लेने का प्रयत्न करते हैं—'फुसका'

श्रमिकों को अण्डों से निकल कर बड़े होने तक, डाकू रानी उचित गन्ध प्राप्त कर लेती है क्योंकि वे पूर्णतया मित्र जाति के ही होते है। अतः वे उसे भोजन कराते हैं और उसके रक्खे हुए अण्डों से निकलने वाले कीट-डिम्बों का लालन-पालन करते हैं।

जब स्वयं रानी के अण्डों से वाद मे तरुण 'सेग्वीनी' निकलते हैं, तो एक मिश्रित उपनिवेश बन जाता है। 'फोरमिका सेग्वीनी' की भिन्न-भिन्न भौगोलिक उपजातियों मे गुलाम बनाने की प्रवृत्ति के भिन्न-भिन्न क्रम होते हैं। एक उप-जाति के श्रमिकों मे कोई प्रवृत्ति नहीं होती, और मिश्रित उपनिवेश परिवर्तित होकर उस समय शुद्ध 'सेग्वीनी' उपनिवेश बन जाता है जब कि रानी काले श्रमिकों का अपहरण करके उनको समाप्त कर देती है। अनेक अन्य उप-जातियो से 'सेग्वीनी' श्रमिक समय समय पर शुद्ध 'फुसका' के घोंसलों पर धावे करते हैं और श्रमिक कीट डिम्बो और इल्लों के ढेर के ढेर ले जाते है। जब उपनिवेश एक निश्चित सीमा को पहुँच जाता है तो कुछ जातियाँ इस स्वभाव को छोड देती है। किन्तु कुछ अन्य ऐसी जातियाँ भी होती है जो स्थायी रूप से इस प्रथा को जारी रखती हैं। साधारण मानवी अर्थ मे मिश्रित घोसलो में रहने वाले काले श्रमिक गुलाम नहीं होते क्योंकि लाल श्रमिकों की अपेक्षा वे अधिक नीच काम नहीं करते और न सामाजिक पलडे मे उनका स्थान अधिक नीचा होता है; वे बहुत कुछ उन बन्दियो के सदृश्य होते है जिनको कैद करने वालो के बराबर का स्थान दिया जाता है, किन्तु उन्हें अपनी राष्ट्रीयता को परिवर्तित करने के लिए बाध्य किया जाता है।

ऐसी परिस्थिति जिससे 'फोरमिका सेग्वीनी' की तरह की कुछ रानियाँ अपने प्रारम्भिक बच्चो को खिलाने के लिए अपने

शरीर मे पर्याप्त भोजन एकत्रित करने मे असमर्थ होती हैं, गुलाम बनाने की ओर पहला कदम है। स्मरण रखने योग्य एक घटना को ले लीजिए—जैसे कि "केथरियो मिरमेक्स"—जो क्षणिक रूप से 'टेपीनोमा' की परजीवी है—जब विदेशी रानी मेज़बान के घोंसले तक पहुँचती है और तुरन्त ही श्रमिक उसे जबरदस्ती पकड लेते है। एक बार जब वह घोंसले मे आ गई तो अक्सर श्रमिक उस पर आक्रमण करते है, किन्तु उस समय वह उछल कर एक इल्ले की पीठ पर सवार हो जाती है या बहुत करके मेज़बान रानी की पीठ पर चढ़ बैठती है, जो उसकी अपेक्षा आकार मे बहुत बड़ी होती है। प्रत्यक्ष रूप से ऐसी दशाओं में उसकी विदेशी गन्ध स्थानीय देश-भक्ति की गन्ध से ढक जाती है, और फिर वह पूर्ण रूप से सुरक्षित हो जाती है। यह घटना ठीक वैसी है जैसी कि एक-दूसरे क्षेत्र मे एक गुप्तचर को होती है, जो किसी विदेश मे सुरक्षित रह सकता है यदि वह अपने वास्तविक भावों को स्थानीय संस्थाओं के प्रति कृत्रिम भक्ति के द्वारा दबा लेता है। वह अपना अधिक से अधिक समय मेजबान रानी की पीठ ही पर व्यतीत करने लगती है, और धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूप से उसके मूड काटने के काम को पूरा करती जाती है। जब तक वह कार्य पूरा हो, वह स्वयं घोंसले की गन्ध प्राप्त कर लेती है और फलतः उसे स्वीकार कर लिया जाता है। इसका साधारण परिणाम यह होता है कि 'टेपीनोमा' श्रमिक विदेशी बच्चों के समूह का भरण-पोषण करने लगते हैं और अन्त मे सारा उपनिवेश शुद्ध 'टेपीनोमा" से बदल कर शुद्ध 'केथरियोसिरमेक्स' का रूप धारण कर लेता है।

'पौलीएर्गस' चींटा 'फोरमिका' की नातेदार होती है, वह भी "फोरमिका फुसका' को गुलाम बनाती है, किन्तु उसका काम वहाँ

कर कुप्पा हो जाता है। आगे चल कर श्रमिक भी किसी अज्ञात कारण ही के वशीभूत होकर अपनी निजी रानी को मार डालते है। वे अपहरणकर्त्ता के बच्चे को पालने लगते है जो सब के सब या तो रानियाँ बनते हैं या नर। ये नर इस बात का एक उत्तम उदाहरण हैं जिसे अंग्रेजी मे neotery कहते हैं अर्थात् उस समय सन्तानोत्पत्ति करना जब कि सारा शरीर अपरिपक्वावस्था मे हो, क्योंकि इल्लावस्था के साधारण लक्षण, जिसमे पख-हीनता भी सम्मिलित है, तरुणावस्था में जैसे के तैसे पहुँच जाते हैं। उस समय जोड़ा खाने की क्रिया का घोंसले ही मे होना आवश्यक हो जाता है और यह सदा भाई-बहनो ही मे होता है, जोडा खाने के पश्चात् पखदार रानियाँ नये 'टेटरामोरियम' सिहासनों की खोज में उड कर बाहर निकलती है।

यह बात बडी मनोरजक है कि चींटियो की अधिकतर परोपजीवी जातियाँ और वे सब के सब श्रमिकहीन स्थायी परोपजीवी दुर्लभ और बिलकुल स्थानीय होते हैं। यह बात भी बड़ी रोचक है कि प्रत्येक अवस्था मे यजमान और शोषणकर्त्ता दोनों मे घनिष्टता का सम्बन्ध होता है। इस पिछली घटना की व्यवस्था इस प्रकार हो सकती है कि श्रमिकों को ऐसी परिचारिका स्वयभू प्रवृतियों की आवश्यकता होती है जो परोपजीवियों के कीट डिम्बों और इल्लो की उपयोगिता के अनुकूल हो।

—o—

नवाँ अध्याय

मेहमान और परजीवी

एक विचित्र प्रकरण मे सामाजिक कीडों ने ख़ास कर चींटियो और दीमकों ने एक ऐसी विशेषता प्राप्त कर ली है

जिस तक मनुष्य नही पहुँच सका है। और वह विशेषता यह है कि उनके समुदायो मे दूसरे प्रकार के जीवधारियो की एक पर्याप्त सख्या निवास करती है और वह ऐसे जीवन के इतनी घनिष्टता के साथ अनुकूल हो जाती है कि अन्य किसी स्थान पर उसके सदस्यों का जीवित रह सकना असम्भव है। हाँ, यह बात बिल्कुल सत्य है कि मानव निवास स्थान मे या उसके आस-पास कई प्रकार के अनेक जीव जाति पाये जाते हैं— जैसे पिस्सू और खटमल की तरह के दैहिक उपजीवी; चूहे, न्याले और झींगुर (Cockroach) की तरह के आर्थिक परजीवी; मुर्गी, सुअर और घोड़ों की तरह के घरेलू जानवर जो भाजन या माल ढाने के लिए पाले जाते हैं, रखवाली करने वाले कुत्तों को तरह के पालतू साथी या रक्षक, गोद मे लिए जाने वाले छाटे कुत्ते, तोते या सुनहलो मछली (gold fish) की तरह के प्रेमपात्र जानवर या पक्षो। किन्तु चींटियो के घासलों मे घटनाओं का दशा दूसरी हो होती है। उनकी वृक्ष-जुओं और उन पर सवार हाने वाले कोड़ों का वर्णन हमने कर दिया है। किसी अन्य प्रकार के पालतू पशु उनमे नहीं हाते, और न उनमे कोई ऐसो प्रेमपात्र चींटियाँ हाती है जिन्हे जान बूझ कर उनकी सुन्दरता के वशीभूत हो कर बन्दो बना लिया जाना हो। कीड़ों और मनुष्यो में जो अतर बहुधा दिखलाई पड़ जाता है वहीं यहाँ भी काम करता है। इन "चीटी अतिथियों" मे से बहुतेरा का प्राकृतिक चयन के द्वारा अपनी जीवन विधि के अनुकूल बनालिया गया है, और उनकी सारी रचना और स्वयंभू प्रवृत्तियाँ वंश-प्रवृत्ति द्वारा परिवर्तित हो गई है। यह आप देखगे कि चींटियों की रुचि और घृणा ने निस्सन्देह अतिथियो के बीज-जीवाणुओं को एक विशेष प्रकार की आकृति देन में सहायता की है, किन्तु यह आकृति-प्रदान

अप्रत्यक्ष रूप से हुआ है, और हमारे सचेत कृत्रिम चयन की तरह की कोई भी चीज़ चींटियों में नहीं होती। इस कृत्रिम चयन में हम जान-बूझकर अपने प्रेमपात्र पालतू और घरेलू पशुओं के ऐसे नमूनों से बच्चे पैदा कराते हैं जो हमें अधिक अच्छे मालूम देते हैं, और इस चयन में परोपजीवियों या नाशकारी जीवों के विरुद्ध कोई संगठित युद्ध प्रवृत्ति नहीं होती, जैसी कि बंगाल में मच्छड़ों से छुटकारा पाने के लिए हो रही है।

अन्तिम बात यह है कि बहुत से विदेशी जीव तुलना में स्वयं चींटियों के आकार के बराबर होते हैं। यदि हम सोचें कि भारत में, हमारी इच्छा के विरुद्ध हमारे घरों में भेड़ियों के बराबर बड़े झींगुर और मुर्गियों के बराबर मक्खियाँ निवास करती हैं, या स्वयं हमारे बच्चों के आकार के भुनगे रहते हैं और उनकी उपस्थिति को हम अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं, और हमारी रुचि के ऐसे पालतू जानवर हैं जो हमारी मनमानी सेवा करते है, मसलन ऐसे तोते है जिनमे हमारी पीठ खुजला देने की स्वयभू प्रवृत्ति है, और हम यह भी सोचे कि अमरीका में भी इसी प्रकार के पशुओं के समूह है जो इच्छा या अनिच्छा से मनुष्यों के घरों में बसे हुए है और वहीं अपने बच्चे पैदा करते है, किन्तु उनमे अन्तर इतना ही है कि वे भारत वाले पशुओं से भिन्न जातियों के है, और साथ ही यह भी बात है कि वे हमारे घरों के बाहर अन्य किसी स्थान मे स्थाई रूप से रहने के अयोग्य भी हैं; तब तो हमारे ध्यान मे थोड़ा सा यह विचार आने लगेगा कि चींटियों के निवास स्थानों मे अतिथि पशुओं का कैसा अजायबघर या चिड़िया खाना (menagerie) है।

इन प्राणियों में से अनेकानेक ने, और सम्भवतः उन बेशुमार मेजवानों ने जिनके प्रति चींटियाँ सक्रिय मित्रता प्रदर्शित

करती हैं, विकास का वह तरीका ग्रहण कर लिया है जिसके द्वार वे अपने मेज़वानों की विशेष प्रकार की लोलुपता से लाभ उठा है। साथ ही इस लोलुपता ने उनके मुखांग (Trophallaxis के कारण एक विशेषता प्राप्त करली है। उन्होंने ऐसी ग्रन्थियाँ बना ली है जो उनके शरीर से वैसा ही स्राव निकालती है जैसा कि स्वय चींटी कीट-डिम्ब निकालते हैं। और इस स्वादिष्ट रस के चाटने के लाभ के बदले मे श्रमिक उन्हे उसी प्रकार भोजन कराते हैं जैसे कि वे अपने कीट-डिम्बों को खाना खिलाते हैं। कभी-कभी अतिथियों के स्राव मे ऐसे नवीन और अत्यन्त आकर्षक स्वाद-गुण होते हैं कि परिचारिकाएँ इन विदेशियों के पक्ष में स्वयं अपने निजी रक्षितों को भी भूल जाती हैं। हम दुःख के साथ यह जानते है कि ऐसे भी मानव-माता-पिता है जो नशा पीने के लोभ मे अपने बाल-बच्चों को भूल जाते है। किन्तु यह बात तो ऐसी है जैसे कोई माता एक कृत्रिम पुत्र के शरीर से बाहर निकाली हुई जौ की शराब (gin) के प्रलोभन मे आकर अपने शिशु को छोड दे।

'ह्वीलर' महाशय ने इस घटना का सुन्दर वर्णन इस प्रकार किया है—"जिस किसी कीड़े मे भी इस प्रकार की ग्रन्थियों वाले आकर्षण होगे। वही चीटियों को उसकी देख-भाल करने, उसे भोजन कराने और उसे अपना दत्तक बना लेने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है और वह वैसे ही उनके उपनिवेश का सदस्य बन जाता है जैसा कि एक आकर्षक और सुन्दर स्वभाव का विदेशी किसी मानव सम्प्रदाय मे वास्तविक नागरिकता के अधिकार और पोषण पा सकता है किन्तु चींटियों ने इसका व्यवहार क्रम बड़ा विचित्र होता है। क्योंकि विदेशी जीवों की गति-विधि बिल्कुल ही विदेशी होती है। यदि हम चींटियों

के मेहमानो या विदेशी कीड़ो की तरह रहने लगे तो हमें ऐसा मालूम देगा कि हम किसी अनोखे और विचित्र देश में रह रहे हैं। फिर तो हम साही, मगर, घड़ियाल आदि अपने घरो में पालने लगेंगे और उन्हें अपने साथ बैठा कर भोजन कराने में हमें मजा आने लगेगा। फलतः हमारे बच्चे हमारी लापरवाही से नष्ट हो जायँगे या असाध्य रोगी हो जायँगे।" (जहाँ हम एक से तरीके से रहने लगते हैं वहाँ के समाज में हम सचमुच मिलजुल जाते हैं और उसके रहन-सहन में तथा वहाँ के निवासियों के रस्मो-रिवाज में हमें आनन्द आने लगता है।)

इन विदेशी शोषकों में से कदाचित् सबसे अधिक विचित्र, 'स्टेफीलिनिडि' जाति के गुबरीले, 'लामचूसा' और उनके नातेदार होते हैं। 'लामचूसा' की आदतों को प्रकाश में लाने का यश कृमिशास्त्रवेत्ता पादरी 'वासमैन' महाशय को है। वह केवल 'फार्मिकासेंग्वानी' नामक लाल रंग की दास निर्माताओं में ही रहता है। तरुण गुबरीला चींटी-श्रमिकों को अपने स्पर्श करने वाले मुँह के बालों से थपथपा कर भोजन माँगता है, उसके उदर का पृष्ठभाग सुनहले बालों के गुच्छों से आच्छादित रहता है, जिसे 'ट्रिकाम्स' अर्थात् बाह्यत्वचा पर उगने वाले केश कहते हैं, ये बाल विशेष ग्रन्थियों के मुख को चारों ओर से घेरे रहते हैं और उनका रस निकालने के लिए स्तन के अग्र भाग (teats) के बदले में काम देते हैं। गुबरीले अपने उदर को चींटियों की पीठ पर पहुँचा कर उसे उनके सन्मुख उपस्थित कर देते है, और चींटियाँ बड़ी उत्कण्ठा से उस तेल जातीय रस को चूस जाती है और पारितोषिक के रूप में गुबरीलों को अपना उगला हुआ भोजन प्रदान कर देती है। घुन सरीखे कीट-डिम्ब प्रत्यक्ष रूप से अधिक मूल्यवान चर्बीले रस निकालने लगते हैं; क्योंकि चींटी श्रमिकों

के द्वारा उन्हे केवल उगला हुआ भोजन खिलाया ही नहीं जाता और न केवल उनका पालन-पोषण होता है, तथा उन्हे स्वयं चींटियों के बाल-बच्चों के साथ हिलमिल कर रहने-सहने का अवसर दिया जाता है बल्कि उन्हे चींटी कीट-डिम्बों को खा लेने की भी आज्ञा रहती है। सच बात तो यह है कि ऐसा मालूम देता है कि चींटियाँ स्वयं अपने बच्चों की अपेक्षा 'लोम चूसा' के बच्चे को अधिक पसन्द करती है। इसका परिणाम यह होता है कि स्वय उनके बाल-बच्चों मे से अधिकांश नष्ट हो जाते हैं।

ऐसे ही उपनिवेशों मे जिनमे 'लोमचूसा' का दूषित संसर्ग अधिक होता है मिथ्या नारियाँ उत्पन्न हो जाती है। यह बात मान ली गई है कि चींटियाँ अन्त मे श्रमिकों की कमी का अनुभव करती है और इस बात का प्रयत्न करती है कि रानी कीट-डिम्बों का भोजन परिवर्तित करके उन्हे श्रमिक बना लें—किन्तु यह कार्य इतने विलम्ब से होता है कि उसका कोई परिणाम नहीं निकलता। एक दूसरा सम्भावी स्पष्टीकरण यह हो सकता है कि रानी-कीट-डिम्बों की उपेक्षा हो जाती है और उन्हे उचित प्रकार का भोजन नही मिल पाता, अतएव उनकी क्रमवृद्धि श्रमिकों की-सी होने लगती है। ये मिथ्या-नारियाँ साधारणतया एक दूषित संसर्ग वाले घोंसले की आबादी का पाँच प्रतिशत होती है और बीस प्रतिशत तक पहुँच सकती है। इन्हे "सुस्त, डरपाक, और अयोग्य" कहा जाता है। जब एक घोंसले में इनका दूषित संसर्ग अधिक बढ़ जाता है तो उसमे रानियाँ नहीं उत्पन्न होतीं और शीघ्र ही वह घोंसला नष्ट हो जाता है।

यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि गुबरीलों के कारण लाल रंग वाले दास-निर्माताओं की सारी की सारी नसल शीघ्र

लुप्त हो जाने वाले मार्ग की ओर अग्रसर है। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि उक्त जाति संख्या में प्रचुर है और बड़ी उपजाऊ होती है, और परोपजीवियों का दूषित संसर्ग केवल स्थानीय और छितरा हुआ होता है। यह घटना केवल इसी मेजवान और इसी परोपजीवी के लिए ही सत्य नहीं है बल्कि अन्य प्रकार के समस्त घातक चींटी-परोपजीवियों और उनके मेजवानों के संबन्ध में सत्य है, ये परोपजीवी चाहे दूसरे समुदाय के कीड़े हों या गुलाम बनाने वाली अर्थात् परोपजीवी स्वभाव की स्वयं चींटियाँ हों। एक घातक परोपजीवी के लिए सबसे बड़ा खतरा यह है कि वह अपने मेजवान को इतनी अधिक हानि पहुँचाए कि वह आवश्यकता से अधिक प्रभावोत्पादक हो जाये। क्योंकि यदि मेजवान का ह्रास होता है तो उसका भी ह्रास होने लगता है; यदि मेजवान का क्षय होता है, तो वह भी लुप्त हो जाता है।

साधारणतया खूब विस्तृत रूप से सफल और अपने को स्थिति के अनुकूल बनाने वाली जातियाँ ही अनेकानेक प्रकार के परोपजीवियों को सहायक होती है क्योंकि बोझ से दब जाने की उनकी बहुत कम सम्भावना होती है। पित्त-उत्पन्न करने वाले कीड़ों की पर्याप्त प्रचुरता जिसका प्रभाव शाहबलूत के वृक्ष पर पड़ता है, एक दूसरे समूह का उदाहरण है। साथ ही यदि परोपजीवी अपने मेजवान को मार कर स्वयं अपनी हत्या नहीं करना चाहता, तो उनकी संख्या का सीमित रहना आवश्यक है, यह सीमा चाहे मेजवान के आंशिक छुटकारा पाने से प्राप्त हो या एक मेजवान से दूसरे मेजवान तक फैल जाने की कठिनाइयों से हो, अथवा किसी अन्य प्रकार से हो। अतः परोपजीवी सत्ता का साधारण नियम यह है कि परोपजीवी की संख्या अपने मेजवान की अपेक्षा न्यून होनी चाहिए अथवा किसी दूसरे तरीके

मे उसका प्राणि-शास्त्र सम्बन्धी प्रभुत्व कम होना चाहिए।

'लोम चूमा' पर पड़ने वाला अवरोध बड़ा विचित्र होता है। चींटियाँ गुबरीलों के छोटे बच्चों के प्रति स्वयं अपने इल्ले, बच्चों का-सा ही व्यवहार करती है। यह चींटी अपने पूर्ण-पोषित कीट-डिम्बों को धरती मे गाड देती है, यहाँ वे अपने कीट-कोष बनाते हैं और तब इल्लो के रूप मे पुनः खोद लिये जाते हैं, और उन्हे साफ करके विशेष कमरों मे रख दिया जाता है। 'लोम चूमा' के कीट-डिम्बों को भी इल्ले बनने के लिये गाड देना आवश्यक है। किन्तु वे कीट कोष नहीं बनाते और यदि खोद कर पुनः बाहर निकाले जाते है, तो अनिवार्यतः मर जाते हैं। इसलिए वे ही थोड़े-स गड़े हुए गुबरीले इल्ले, जिन्हे खोद कर बाहर निकालने मे चींटियाँ विफल होती हैं, बढ कर तरुण बनने मे सफल होते हैं और इस प्रकार 'लोम चूसा' की जन संख्या पर्याप्त रूप से सीमित रहने के लिए बाध्य हो जाती है।

परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध रखने वाले 'एटामिलीज' और 'एकसनोडूसा' नामक गुबरीलों मे एक यह विचित्रता होती है कि उनके दो मेजबान होते हैं। गर्मी की ऋतु मे वे 'फोरमिका' के घोंसलों मे रहते हैं किन्तु जाड़े मे 'कम्पोनोटस' जाति के साथ जिसे बढ़ई चींटी कहते है निवास करते है। वे ग्रीष्म काल ही में अण्डे देते है अतः 'कम्पोनोटस' के अण्डों-बच्चों पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता और उनमे मिथ्या नारियों का उत्पत्ति नहीं होती।

जिन गुबरीले मेहमानों को चींटियों ने मित्र बना कर अपने घोंसलों मे स्थान दिया है उनकी सैकड़ों जातियों का पता उनके घोंसलों मे अब तक चल चुका है। उनमें सब ही के विशेष प्रकार

की ग्रन्थियाँ होती हैं और सब ही के स्तन के अग्रभाग के सदृश्य वाह्य त्वचा पर उगने वाले केश भी होते है। यह बडी विचित्र बात है कि वाह्यत्वचा पर उगने वाले ये बाल प्रायः सदा पीले रंग के होते हैं और गुबरीलो का साधारण रग तेलियालाल होता है, इसके साथ ही यह बात भी है कि उनके जबडों में बहुधा यह खास विशेषता होती है कि जिस तरल पदार्थ को चींटियाँ खींच लाती है उसपर वे निर्वाह कर सकते हैं और उनके स्पर्श अनुभव करने वाले मुँह के बालों मे इतना सुधार हो जाता है कि वे अन्य चींटियों के स्पर्श अनुभव करने वाले मुँह के बालों का ना याचनायुक्त कार्य करने की नकल कर सकते हैं। जिस मदिरा और चिकनी उत्तम मिठाइयो को ये गुबरीले उत्पन्न करते हैं, चीटियों को उसकी चाट पड जाने का प्रत्यक्ष प्रमाण हमे उस उपाय से प्राप्त होता है, जिसके द्वारा चीटियाँ गुबरीलो को भय दिखला कर पकड लेती है और उन्हे सुरक्षित स्थान पर ले जाती है।

दूसरे प्रकारो के कीडे-मकोडे भी चींटियों के लोभ और लोलुपता से लाभ उठाते हैं। उदाहरण के लिये तितलियों ही को ले लीजिए। पिछले दस वर्षों मे यह पता लगा है कि जिन जीवो की सम्भावना नहीं थी, उन्हीं मे से कुछ नीली तितलियां (Lycaenidae) भी ऐसी होती है जो अपनी क्रमवृद्धि की एक अवस्था में चींटी-भक्षक हो जाती है। झिनगा Caterpillar अपना मामूली शाकाहारी जीवन उस समय तक व्यतीत करता जब तक वह अपनी आधी बाढ को नहीं पहुंच जाता। तब वह अपने भोज्य-वृक्ष में उतरता है और एक चींटी पथ पर बैठ जाता है। वहां वह वाञ्छित रस-सा निकालता हुआ-सा प्रतीत होता है, चींटियां उसे पाकर अपने घोंसलों मे ले जाती हैं जहाँ

वह सम्प्रदाय के व्यय पर जीवन निर्वाह करता है ? और आवश्यक वस्तुओं के बदले में विलास की वस्तुये उस समय तक देता रहता है, जब तक कि उसके इल्ले देने का समय नहीं जाता।

दूसरे चीटी मेहमान, जो न तो गतिमान मदिरालय होते हैं और न मिठाइ वालों की दुकाने, उनके साथ चींटियाँ शत्रुओं का-सा व्यवहार करती हैं। उनका जीवन-निर्वाह चोरी से होता है और वे अपनी चपलता और दृढ स्वरक्षा ही के कारण नष्ट होने से बच पाते हैं। उदाहरणार्थ, 'लेपिसमीना' जो Silver Fish जाति का एक प्राचीन पंख हीन कीड़ा है, बड़ी धृष्टता के साथ 'लेसियस' की चोरी करता है। 'जेनेट' महाशय ने उस दृश्य का वर्णन किया है जब कि 'लेसियस' श्रमिक भोजन लेकर अपने घोंसले में लौट जाता है। तुरन्त 'लेपिसमीना' अपनी उत्तेजित चाल-ढाल से यह प्रकट करने लगती हैं कि उन्हें किसी वस्तु की गन्ध मालूम दे रही है। इसी बीच में लौट कर आने वाले श्रमिक घर पर ठहरने वाली अपनी बहनों को उगल कर भोजन देने लगते हैं। जिस समय भोजन का यह आदान-प्रदान होता है, उस समय खाने वाले और खिलाने वाले अपने शरीर के अग्र भाग को ऊपर उठाकर एक दूसरे के सामने अपना अपना मुँह कर देते हैं। एक चोर ऐसे जोड़े के पास आता है, उनके सिरों के नीचे रेंग जाता है, शीघ्रता से उस तरल पदार्थ को चाट जाता है ज्योंही वह एक मुख से दूसरे में जाने लगता है और भाग खड़ा होता है। एक सुकुमार दशा में होने के कारण साधारणतया चींटियाँ इस योग्य नहीं होतीं कि वे 'लेपिसमीना' का पीछा कर सकें और वह उनकी पहुँच से बाहर हो जाता है। 'लेपिसमीना' के पकड़ में न आने का एक कारण और भी होता है कि इसके

सारे शरीर पर चिकने पंखों की तरह का एक परत चढ़ा रहता है।

एक दूसरा चोर-मेहमान एक यान्त्रिक सुरक्षा पर भरोसा करता है। वह ऐसे लम्बे-लम्बे परतों से चारो ओर से घिरा रहता है, जो शक्ल में कुछ-कुछ घोडों के उन अलंकारो (ओहारों) की तरह के होते है जो मध्य कालीन घोडे दंगलों मे पहना करते थे। इन परतों मे से कुछ इस भाँति आगे की ओर भी कर लिए जा सकते हैं कि वे उनके मुख के बढे हुए भाग या सूँड की रक्षा के लिये थोडा बहुत नली का सा आकार बना ले। साथ ही कुछ बाल ऐसे भी रह जाते हैं जो पार्श्वों से निकल कर सीधे आगे बढ़ जाते हैं। यह कीड़ा भी अपने आगे बढे हुए मुख के द्वारा श्रमिक से उसी समय माल चुराता है जब कि वह एक दूसरे को भोजन कराते हैं। यदि कोई चींटी किले-बन्दी के नीचे आने का प्रयत्न करती है, तो कीडे के बाल उसी प्रकार आक्रमण की सूचना देने का काम करते है जिस प्रकार बिल्ली के गलमुच्छे करते है और उस ओर के परत जमीन की ओर झुक जाते हैं, इससे जीवधारी के जिस पार्श्व पर आक्रमण होता है उस पर ये परत एक 'टेक' के समान उसकी रक्षा का कार्य करते हैं।

इसके पश्चात् कुछ ऐसे परजीवी भी होते है—अगर आप चाहे तो उन्हे चोर कह ले—जिनकी ओर चींटियाँ तनिक भी ध्यान नहीं देतीं। 'व्हीलर' ने एक छोटी मक्खी (मेटाशीना) के कीट-डिम्बा का वर्णन किया है, जो 'पेचीकान्डिला' वंश की चींटी का शोषण करता है। चींटी-बच्चे की गर्दन के चारों ओर मक्खी-बच्चा एक 'कालर' (पट्टे) की तरह चिपक जाता है। चींटी-बच्चे को भोजन कराने की विधि यह है कि उसके उदर की बगल के एक प्राकृतिक कठौते मे कीडे-मकोड़े के टुकडे रख दिये

जाते हैं। जिस समय यह कार्य होता है उसी समय 'मेटोपीना' अपनी लिपटन खोल लेती है और अपना हिस्सा लेने पहुँच जाती है। प्रत्यक्ष रूप से वह अपने मेज़वान की गन्ध ग्रहण कर लेता है, क्योंकि चींटिया उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देतीं और शेष चींटी-बच्चे के समान उसे भी स्वच्छ बनाए रखती है। यहाँ पर उसके सुरक्षित रूप से बचकर निकल आने की अनुकूल दशा का वर्णन करने की भी आवश्यकता है। मेजमान-बच्चे की क्रम वृद्धि क साथ उसके परिवर्द्धन का भी समीकारण हो जाता है, और जब चींटी कीट-डिम्ब अपनी इल्ला अवस्था को पहुँचने लगता है तो मक्खी-कीट-डिम्ब, जो सचमुच अपने मेज़बान के कीट-कोप मे घिरा रहता है, पिछले सिरे पर खिसक जाता है और वही वह भी अपनी इल्ला अवस्था प्राप्त करने लगता है, और कीट-कोष की दीवाल से सटकर बहुत फूला हुआ इल्लालय Puparium बना देता है। जब पंख-हीन तरुण चींटी बाहर निकलने के लिए तैयार हो जाती है, तो कीट-कोप के अगले हिस्से को श्रमिक काट कर खोल देते है, और बडी सावधानी से उसे खींच कर बाहर निकालते हैं, और तब जाहिरा-खाली कीट-कोप को उठाकर कूड़े के ढेर मे फेक देते है। मक्खी को इल्लावस्था प्राप्त करने मे प्राकृतिक चयन के अनुसार चींटियो की अपेक्षा अधिक समय लगता है; इस प्रकार जब मक्खी निकल कर बाहर आती है, तो सुरक्षित रूप से निकलने मे उसे कोई रुकावट नहीं मालूम पड़ती। यहाँ पर भी, परजीवी केवल चींटियों की बहुतायत ही से लाभ उठाता है, जिस विशेष कीट-डिम्ब की वह चोरी करता है उसे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता और न उपनिवेश ही को किसी प्रकार की क्षति पहुचाने के चिन्ह प्रदर्शित करता है।

जिन मेहमानों को क्षम्य समझा जाता है उनमें से सबसे विचित्र कदाचित् बाह्य परजीवी 'एन्टी नोफोरस' नामक घुन होता है, जो उन्हीं 'लेसियस चींटियो को कष्ट दिया करता है, जिनका वर्णन हमने किया है कि वे प्राय: अन्धी होती हैं और भूगर्भ मे सफेद चींटी-गायों को पाले रहती हैं। अपने मेजबानों की तुलना मे ये घुन काफी बडे होते हैं ठीक वैसे ही जैसे कि मनुष्य की तुलना मे एक बिल्ली या छोटा-सा बन्दर होता है। ये घुन चार-चार तक (या कदाचित् छ. तक) एक चींटी पर पाये जाते है। जो स्थान ये ग्रहण करते हैं उसमे इनका व्यवहार बडा विचित्र होता है, वे अपने को सदा ऐसे स्थान पर रखते हैं जिससे चींटी के सन्तुलन मे कोई उलट-पलट न होने पाये। जब उनमे से एक ही होता है, तो वह सदा ठुड्ढी के नीचे रहता है; यदि एक दूसरा आ जाता है, तो दोनों सरक कर उदर के दोनों ओर हो जाते है, तीसरा सिर के नीचे स्थान ग्रहण करेगा, चौथा सिर के एक तरफ रहेगा और तीसरा सरक कर दूसरी ओर पहुँच जायगा। पाँचवाँ फिर ठुड्ढी के नीचे चिपक जायगा और विरला छठा उदर के ऊपर वाले एक मात्र खाली स्थान को ग्रहण कर लेगा।

जो घुन सिर मे चिपके रहते है वे उन उगले हुए बूँदों को खाते हैं, जो स्वयं उनके बाहन और दूसरी चींटियों के मुँह में सीधे-सीधे आते-जाते हैं, या केवल अपने लाभ के लिए वे उसे अपनी अगली टाँगों से थपथपा कर 'खखारने' को बाध्य करते हैं। वे अपनी अगली टाँगों को मरोड कर ऐसा रूप दे देते है जो चींटियो के मुँह के उन बालों से मिलते-जुलते से मालूम देने लगते हैं जिनके द्वारा वे स्पर्श अनुभव करती है। जो घुन अपने के उदर पर सवारी किए रहते हैं वे दूसरी चींटियों

को थपथपाते हैं या श्रमिक साथियों मे जिस रस का आदान-प्रदान होता है उसके बिन्दु झपट लेते है।

यह एक विचित्र घटना है कि घुन बदले मे कोई रस उत्पन्न करते हुये नहीं मालूम देते, और जिस समय वे चींटियों पर चढ़ने लगते हैं उस समय चींटियां उन्हें हटा कर फेंक देने का प्रयत्न भी करती हैं, किन्तु जब एक बार वे एक समान तौल के स्थान पर डट जाते हैं तो वे उन्हें सहन कर लेती हैं। यह केवल अनुमान किया जा सकता है कि घुनों में घोंसले की गन्ध आ जाती है, क्योंकि ज्योंही उन्होंने एक निश्चित स्थान ग्रहण कर लिया त्योंही वे कष्ट का कारण नहीं रहते और अपने मेजबानों को धोखे में डालने के लिये उनकी कोमल थपथपाहट वैसा ही काम करती है जैसा कि दूसरे श्रमिकों को याचनाएँ। व्हीलर महाशय का कहना है कि अन्धी चींटियाँ उनके प्रति वही भाव रखती है जो हम अपने प्रिय पालतू पशुओं के प्रति रखते हैं; वास्तव मे ऐसा होना सम्भव हो सकता है, किन्तु साधारण आधारों को देखते हुये यह एक अनहोनी बात-सी प्रतीत होती है।

ये उदाहरण तो केवल एक नमूना मात्र हैं। चींटी-मेहमानों की २००० से ऊपर प्रथक जातियाँ अब तक मालूम हो चुकी हैं, जो चींटियों की जानी हुई जातियों की लगभग आधी संख्या के बराबर है, और इनमे घुनों, मकड़ियों, Crustacea, तथा बहुत से कीड़ा-मकोड़ा वर्गों के प्रतिनिधि शामिल हैं।

सचमुच यह एक आश्चर्यजनक पशु-संग्रहालय है "जहाँ कहीं भोज होगा, वहीं गिद्ध जमा होंगे।" और यह चींटियों की सफलता ही है जिसने दूसरे जीवों के इन जत्थों को उनका शोषण करने के लिए प्रोत्साहित किया है।

दसवाँ अध्याय

दीमक या "सफ़ेद चींटियां"

अपने निरीक्षणात्मक वर्णन से हम दीमकों को अलग नहीं छोड़ सकते। क्योकि यद्यपि सचमुच वे वास्तविक चींटियो से बिल्कुल असम्बन्धित है तथापि कई प्रकार से उनमे और चींटियो मे बड़ी समानताएँ है और इसीलिये उनको "सफेद चींटियो' की उपाधि दी गई है। उनके उपनिवेशो का संगठन चींटियों के घोसलों से बहुत कुछ मिलता-जुलता है और साथ ही पर्याप्त रूप से इतना भिन्न भी होता है कि हमे सोचने के लिए बहुत सी सामग्री प्राप्त होती है। स्वभाव की विचित्रता और सामाजिक संगठन की दृष्टि से वे बहुत सी बातों मे चींटियों से बढकर है, किन्तु उनकी सारी प्रचुरता और उनकी रचना तथा स्वयभू-प्रकृतियों के अनेक चमत्कार के होते हुए भी उन्होने जीव-जगत मे चींटियो की सी प्रधानता नहीं प्राप्त की है। अत्यन्त निम्न कोटि के कीडो से उत्पन्न होने के चिन्ह उनमे अब तक विद्यमान है, उनमे से कदाचित् ही कोई ऐसा हो जो दिन के प्रकाश को सहन कर सके और वे उष्ण प्रदेशो (Tropics) से बाहर जाने मे बहुत कम सफल हुए हैं।

वे 'इसोपेट्रा' वर्ग के है जो कि कीड़ो के आदि-वर्गों मे से एक है। इनमे कोई वास्तविक रूपान्तर नही होता किन्तु ये अण्डों से उसी आकार मे निकलते है जो प्रमुख अंशो मे तरुणो का होता है। लगभग उनमे से सब उष्ण या अर्ध उष्ण प्रदेशों मे होते है। थोडे से ऊपर के अक्षांशों (Latitudes) मे घुस जाते हैं; किन्तु चींटियों के बिल्कुल ही विपरीत, संयुक्त प्रदेश अमरीका मे करीब चालीस से अधिक जातियाँ नहीं है, और उनमे से

केवल दो 'बोस्टन' नगर के समानान्तर अक्षांश में पहुँची है। दीमकों और चींटियों में केवल इतना ही अन्तर नहीं है बल्कि यह बात भी है कि यदि एक ओर चींटियों के उच्च कोटि के उपपरिवार-शीत प्रदेशों में प्रवेश करने में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं, तो दूसरी ओर दीमकों का "मेटा टरमी टाइडो" नामक उच्चतम परिवार प्रायः उष्ण प्रदेशों ही में रहा है।

इनका विभाजन सरलता से चार परिवारों में किया जा सकता है, जिन्हे प्रगतिशील विशेषता की इकहरी पंक्तियों में क्रमवार रखी जा सकता है। इनमे का एक परिवार जिसे 'मेस्टो टरमीटी' कहते हैं और जिसमे केवल एक ही जीवित जाति मौजूद है, सिर्फ आस्ट्रेलिया द्वीप ही में सीमित है, यद्यपि पृथ्वी मे से खोदकर निकाले हुए (Fossils) पदार्थों से प्रकट होता है कि प्रारम्भिक तृतीय युग (Tertiary) में यह परिवार बडे विस्तार के साथ यूरोप मे और कदाचित् अन्य स्थानों मे, फैला हुआ था। इस प्रकार रचना और वितरण की दृष्टि से 'मेस्टोटरमीस' और उच्च प्रकार के दीमकों मे वही सम्बन्ध है जो 'प्लेटापस' नामक 'डकबिल' में (आस्ट्रेलिया का एक विचित्र प्राणी जिसके जबड़े बत्तख की चोंच की तरह के होते हैं।) और शेष जीवित स्तनपाइयों मे होता है और जिस प्रकार कुछ सरीस्टपों से स्तनपाइयों का सम्बन्ध प्लेटीपस सूचित करता है, ठीक उसी प्रकार 'मेटोटरमीस' प्रकट करता है, कि दीमक अपने 'आरथोपटरेव' पूर्वजों से उत्पन्न हुए है, क्योंकि उसमें उस झींगुर (Cockroach) परिवार के घनिष्ट सम्बन्ध की झलक पाई जाती है, जिसे 'प्रोटोब्लेटाडी' कहते हैं और जिसे समाप्त हुए बहुत काल हो गया।

सारे दीमक पूर्ण रूप से सामाजिक होते हैं और उनके

नपुसक उपनिवेश का काम करते हैं। किन्तु दो और कदाचित् तीन भौतिक भेद उनके और चींटियों, मधु-मक्खियों तथा बर्रों के सामाजिक सगठन मे पाये जाते हैं। पहली बात तो यह है कि सदा उनके उपनिवेश का प्रारम्भ एक अकेली रानी के बजाय एक 'शाही जोडे" से होता है, जिसमे एक रानी के साथ वह नर भी रहता है जिसने उसे उर्वरित बना दिया है। और दूसरी बात यह है कि श्रमिक और उपस्थित रहने वाले अन्य नपुसक जातियों के व्यक्ति, नर और मादिन दोनों यौनियों के बराबर-बराबर पाये जाते है। ऐसा नहीं हाता कि सब की सब यौनि-नष्ट नारियाँ ही हों। और तीसरी बात यह है कि सभवतः कम से कम भिन्न-भिन्न मुख्य जातियाँ, सारी की सारी वश प्रकृति से निर्धारित होती हैं, न कि भोजन के अन्तर से। अतः दोनों यौनियो का सामाजिक महत्व बराबर होता है और ऐसा नहीं होता कि नरों का शुद्ध काम केवल जनन क्रिया करना ही हो। यदि तीसरी बात प्रमाणित सिद्ध होती है, तो निश्चय ही उनका सामाजिक संगठन चीटियों और मधु-मक्खियों की अपेक्षा एक नीचे समतल पर है, क्योंकि भिन्न-भिन्न जातियों का निर्धारित होना पूर्णतया बीज सम्बन्धी यत्र-रचना पर अवलम्बित है और उसका आधार धात्रियों की स्वयंभू प्रवृत्तियों पर तनिक भी आश्रित नहीं है।

इनमे ऐसे उपनिवेशों से लेकर, जिनमे केवल दस-पाँच कोडी व्यक्ति होते हैं, और वे भी केवल एक नपुसक जाति के, उन समुदायों तक, जिनकी सख्या लाखों के ऊपर तक पहुँच जाती है, और जो गिनती मे चींटियों को भी मात करते हैं, एक पूरा सिलसिला बधा हुआ है। और ये बहुरूपत्व का विचित्र गुण प्रदर्शित करते हैं। अत्यन्त परिवर्द्धित सम्प्रदायों

मे निम्नलिखित चार प्रकार के नमूने होते है—(अ) उत्पादक जाति (१) प्रथम आकृति के उत्पादक ('रानियाँ' और 'राजे') (२) द्वितीय आकृति के जनक या स्थानापन्न रानियाँ और राजे; (३) तृतीय आकृति के जनक या श्रमिकों की भी स्थानापन्न रानियां और राजे।

(ब) श्रमिक जाति—(४) श्रमिक नर और मादिन (स) रक्षक जाति—या तो (५ अ) सिपाही या दूसरे (५ ब) विचित्र थूथुन वाली रक्षक आकृतियाँ जिन्हे 'नसूती' या 'नाक वाले' कहते है इनमे भी नर और मादा दोनों होते है। इस प्रकार दस जातियाँ हुई पाँच नर और पाँच मादा साथ ही श्रमिकों और सिपाहियों दोनों ही मे उप-जातियों के भेद हो सकते हैं, जो चीटियों की तरह आकार और शरीर तथा सिर के अनुपात से विभिन्न प्रकार के होते हैं। अत: इनकी पहचानने योग्य आकृतियो की पूरी संख्या बारह या चौदह तक पहुँचती हैं।

प्राय: समस्त दीमकों मे जातियों के वास्तविक राजा और रानी ही पूर्ण रूप से वर्ण (Pigmented) होते हैं। और वे ही दिन के प्रकाश के सामने आने के योग्य होते हैं। उनके पख होते है, किन्तु चींटी रानी के समान ये भी अपनी एक मात्र उड़ान के लिए अपना घोंसला छोड़ने के पश्चात् धरती पर उतर कर अपने पंख गिरा देते है। यह उडान वास्तविक वैवाहिक उड़ान नहीं होती, बल्कि यह एक छितराहट की उड़ान होती है, क्योंकि जोड़ा हवा में नहीं खाया जाता, किन्तु उनका संयोग उस समय के पश्चात होता है जब कि वे (जुट मे) धरती पर उतर चुकते हैं और अपने पंख गिरा देते हैं। बाद मे रानियों का आकार बढ कर अप्रमाणभूत बड़ा हो जाता है

उस समय ये चार इञ्च से अधिक बडे पिलपिले सफेद मांस के लोथडे मालूम देती है और अपने शेष प्राकृतिक जीवन भर हर दो या तीन सेकेण्ड मे अडे देती रहती हैं।

दूसरी आकृति के जनकों मे उत्पादकों की सी सर्वविशिष्ट जननेन्द्रियाँ होती है, किन्तु आकार और मात्रा में न्यूनवर्णक मे कम मस्तिष्क, आँखे और जननेन्द्रियाँ घाटो और पंख प्राथमिक अवस्था के होते है, तृतीय आकृति के उत्पादकों मे हीनता की मात्रा एक पग और आगे बढी रहती है; और उनके पंख बिलकुल ही नहीं होते, वर्णक का कहीं पता नहीं लगता आँखें चिह्न मात्र होती हैं, मस्तिष्क और बच्चेदानिया बिल्कुल सकुचित होती है। स्थानापन्न रानियों और राजाओ की इन दोनों जातियों को हम neotenie कहते है अर्थात् उस समय सन्तानोत्पत्ति करने वाली जब कि सारा शरीर अपरिपक्वाव मे हो, वे अपने कीट-डिम्ब-काल प्रारम्भिक अथवा बाद की अवस्था के चिन्ह अपने तरुण उत्पादक स्वरूप मे लिए हुए आते है। उनकी मौलिक उत्पत्ति की परताल का उत्तर इस मानित सिद्धान्त से प्राप्त हो सकता है कि उनकी विभिन्नता की सारी प्रक्रिया सिवा उस एक अवस्था को छोड कर जिसमे यौन-कोष (Gametes) परिपक्व होता है उनके परिवर्द्धन मार्ग मे धीमा पड गई है। उपनिवेश मे उनका कर्त्तव्य कर्म कुछ अस्पष्ट सा होता है। आम तौर से यह विश्वास किया जाता है वे रक्षित उत्पादक इकाइयाँ है जो वास्तविक राजाओं और रानियों क मर जाने पर उनका स्थान ग्रहण करने के लिए तैयार रहती है। किन्तु यह बात निश्चित नही है और न यही निश्चित है कि वे अथवा पूर्ण राजे और रानियाँ साधारणतया जाड़ा खाने की अपनी स्वयभू प्रवृत्तियों का प्रयोग करती है। कुछ जातियों के उपनिवेशों में

सच्ची रानी कभी भी परिवर्तित नहीं होती किन्तु उसका स्थान दूसरी आकृति की नारियों के एक पूरे रनवास द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है जिसकी संख्या कभी-कभी एक सौ से भी ऊपर पहुँच जाती है।

श्रमिक सफेद और वर्णक विहीन होते हैं, उनमें पंखों का अभाव होता है, और उनकी आँखे या तो प्राथमिक अवस्था की होती है या बिलकुल नदारद, स्वतंत्र रूप से विकसित होने वाली चींटियों की श्रमिक जाति की तरह उनका मुख्य काम घोंसला बनाना, भोजन खोजना तथा भोजन विनरित करना और दूसरी जातियों का शृंगार करना होता है किन्त चींटी श्रमिकों के विपरीत जनकों अपेक्षा उनके दिमाग़ छोटे होते है। सैनिक पंख हीन होते हैं उनके सिर और जबडे बडे-बडे होते हैं जिन्हे वे साधारणतया उपनिवेश की रक्षा करने के लिए इस्तेमाल करते हैं। केवल उनके सिर पर थोड़ी सी कठोर और वर्णकयुक्त खाल होती है। अतः उनका सिर तो दृढ होता है किन्तु अन्य भाग कोमल और रक्षा-हीन होते हैं। वे स्थायी रूप से धरती के भीतर रहते है अतएव उनकी आँखें निकम्मी होती हैं। 'नसूती' उपनिवेश की रक्षा करते हैं किन्तु सैनिकों के पाशविक बल प्रयोग के सामने उनका यह कार्य वैसा ही होता है जैसा कि रासायनिक युद्ध क्रिया के सामने किर्च की लडाई का होता है। उनके जबड़े नन्हे से होते हैं, किन्तु बदले में उनकी अग्र-ग्रन्थियाँ, जो प्रायः सब दीमकों के होती हैं अधिक बढ़ी हुई होती हैं, और थूथुन की नोक के आगे सुगमता से बनी रहती है। इन ग्रन्थियों से एक चिपकने वाला तरल पदार्थ निकाला जाता है जो शत्रु के अंगों और स्पर्श करने वाले मुँह के बालों

को एक साथ चाट कर निश्चयात्मक रूप से अचल कर देता है और कदाचित् उसमे जहरीले गुण भी होते हैं। मालूम देता है कि कुछ आकृतियों मे 'नसूती' का रस उन कठोर पदार्थो का पिघलाने के काम मे प्रयोग किया जाता है जो श्रमिकों के निर्माण-कार्य में बाधक होते है, कहा यह जाता है कि इस क्रिया से ठोस पदार्थ भी काट डाले जाते है।

"मिस टामसन' ने यह खोज की है कि युवा उत्पादक आकृतियो को श्रमिकों और सैनिको से उत्पात्त काल के समय ही अलग पहिचान लिया जा सकता है और कदाचित् श्रामक और सैनिक का अन्तर भी मालूम हो जाता है। और यह जानकारी उनके दिमाग और आँखो के आकार की विभिन्नता देख कर प्राप्त होती है। इससे यह विशेष रूप से निश्चित हो जाता है कि गर्भाधान के समय ही, कम से कम तीन मुख्य जातियाँ पहले से वैसे ही निश्चित हो जाती हैं जैसे कि बहुत से पशुओ मे योनि भेद निर्धारित हो जाते है। या गुलाब के फूलो मे उनके भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार तय हो जाते है। उप-जातियों या श्रमिकों और सैनिको का निर्णय सम्भवत चीटियो की तरह भोजन के उस अन्तर से होता है जिसको वृद्धि करने वाले बच्चे प्राप्त करते है। किन्तु इसके साथ ही उन विभिन्न शक्तियो का सम्बन्ध भी होता है जो शरीर के विभिन्न अगो की वृद्धि मे होती है। यह बात अभी तक अज्ञात है कि सहायक शाही आकृतियों का विकास कैसे हुआ।

जनन यन्त्र-रचना किस प्रकार काम करती है इसका हमे अब तक कोई सकेत नहीं मिला है। यह बात भी कही गई है कि यद्यपि प्रथम आकृति के राजा-रानी सब जातियो का जनन सकते है, किन्तु द्वितीय आकृति के जनक प्रथम आकृति

वालों का जनन नहीं कर सकते, और तृतीय आकृति वाले न तो प्रथम आकृति वालों को पैदा कर सकते हैं और न दूसरी आकृति वालों को। इसके भीतर जो यन्त्र-रचना छिपी हुई है वह भी अज्ञात है। सम्भव है कि यह भी जनन प्रकृति का ही कार्य हो और दोनों स्थानापन्न आकृतियाँ वापसी की ओर जा रही हों।

दीमकों का भोजन सम्बन्धी अर्थ-शास्त्र अपनी विचित्रता मे चींटियो के अर्थ शास्त्र को भी मात करता है। पहली बात तो यह है कि उच्च कोटि के लकडी खाने वाले दीमक बिना सहायता के अपना भोजन पचाने मे असमर्थ होते है, उन्हे कुछ परजीवियो पर आश्रित रहना पडता है जो उनके सहायक बन जाते हैं। ऐसी आँतो वाले, ये परस्पर आश्रित भिन्न जातीय बाशिन्दे बड़े पतले और बिरौनी युक्त होते हैं जिन्हे "ट्राइकोनिम फाइड्स" कहते है। वे एक कोषीय जीवों से बडे होते है, उनकी गति सनक से भरी होती है और उनकी बिरौनियो का प्रबन्ध भी बड़ा ही विचित्र होता है। साधारणतया वे तरुण श्रमिकों और सैनिकों के अतरंग मे पाये जाते है, और बच्चों तथा जनकों मे नहीं मिलते।

उच्च कोटि के दीमकों में सारा दीमक-गृह अपनी जीवन-सत्ता को केवल लकड़ी से प्राप्त करता है या अन्य मृत पौधों के रचना तन्तुओं से, जिनमे या तो कचकड़ा (Cellulose) होता है या लिग्निन (lignin) नामक रूपान्तरित काष्ठमय कचकड़ा। घोघे से ऊँची जाति के किसी भी जीव के पाचन-रस से कोई आक्रमण न तो कचकड़े पर हो सकता है और न लिगनिन पर।

इसके विपरीत 'ट्राइकोनिमफाइड' ऐसे फेन उत्पन्न करते हैं

जो कचकडे को फाड डालते हैं; इस प्रकार वे अपने मेज़बानों की कमी की पूर्ति करते हैं। दीमक दोनों साझियों को भोजन की सामग्री देते हैं; आद्य प्राणी (Protozoa) उसे रासायनिक रूप से उस समय तक काटते रहते हैं जब तक वह घुलनशील नहीं बन जाता, और फिर दोनों सम्मिलित क्रियाशीलता की उत्पत्ति पर निर्वाह करते है। 'ट्राइकोनिमफाइड' क्यों केवल श्रमिकों और सैनिकों ही में रहते है इसका कारण निस्सन्देह यह है कि केवल ये ही दोनों कच्चा कचकड़ा खाते हैं, शेष अन्य जातियों को ये अपने पाचन की तरल उत्पत्तियाँ देते रहते हैं।

निरीक्षण करने से जिस बात का संकेत मिला था उसको प्रयोग ने प्रमाणित कर दिया है कि दीमक के लिए 'ट्राइकोनिम-फाइड' का होना अनिवार्य है। आद्यप्राणी इस प्रकार की शुद्ध प्राण-वायु (Oxygen) को सहन नहीं कर सकता। प्राण-वायु की खुली आबोहवा में वे थोड़े ही दिन में सबके सब मर जाते हैं और दीमकों पर उनका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। जो श्रमिक इस प्रकार आद्य प्राणियों से विहीन हो जाते हैं वे कुछ सप्ताह मे भूख के मारे मर जाते है, यद्यपि उन्हें मनमानी लकडी मिलती रहती है। अपनी साधारण भूख के अनुसार वे लकडी निगलते जाते है किन्तु उनके पेट के भीतर उसका कोई प्रभाव नही उत्पन्न होता और किंचितमात्र भी लाभकारी हुए बिना ही वह जैसी की तैसी निकल जाती है। यदि कृत्रिम रूप से उनमे कीटाणुओं का प्रवेश कर दिया जाता है तो वे पुनः अपना भोजन पचाने मे समर्थ हो जाते हैं।

इस प्रकार जो भोजन एक बार पचा लिया जाता है वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सारे उपनिवेश में परिभ्रमण करने लगता है, इसकी तुलना मे चींटियों की व्यवस्थाये बिलकुल

प्राचीन कालिक जँचती है। भोजन के इस परिभ्रमण की उपमा हमारे शरीर के रक्त प्रवाह और रंग हीन द्रव (lymph) के चक्कर से दी गई है। यद्यपि यह तुलना बिलकुल भोंड़ी है, किन्तु एक मौलिक बात में वह ठीक भी है—अर्थात् भोजन सचमुच एक पोषक प्रवाह का रूप धारण करता है, जिसके द्वारा समूह की सारी भिन्न-भिन्न इकाइयाँ परस्पर की निर्भरता मे एक-दूसरे से बँधी रहती हैं। पहली बात तो यह है कि चींटियो की तरह दीमक श्रमिक भी रस उगलते है, किन्तु जो कुछ वे उगलते हैं वह आंशिक रूप मे पचा हुआ पदार्थ होता है। दूसरी बात यह है कि वे पूर्ण रूप से बचे हुए भोजन का अधिकांश बाँट सकते है, किन्तु यह क्रिया गुह्य के द्वारा ही होनी चाहिए। उसका केवल थोड़ा-सा अंश आँतों के मार्ग मे चुस जाता है और शेष भाग दूसरों के खाने के लिये पीछे ढकेल दिया जाता है। तीसरी बात यह है कि जो भोजन चुस जाता है उसको लार ग्रन्थियों के द्वारा ऐसे तरल रूप मे परिवर्तित कर दिया जाता है जो पौष्टिक और स्वादिष्ट गुणों से परिपूर्ण हो जाता है और इसी के थोडे से विन्दु दूसरों के लिए निकाले जाते है। यह सम्भव मालूम देता है कि विभिन्न जातियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ रस रूप मे बाहर निकालती है, और घोंसले के अन्धकार मे उनकी पहचान उनके स्वाद से होती है। मालूम देता है कि प्रथम श्रेणी की प्रौढ़ रानी सबसे स्वादिष्ट रस बाहर निकालती है और यह देखा गया है कि नित्य ही श्रमिकों का एक नियमित दरबार उसके चारों ओर लगा रहता है। ये दरबारी श्रमिक उसका अभिवादन नहीं किया करते और न उसकी सेवा सुश्रूषा ही करते रहते है किन्तु जैसे जैसे राजसी रस बाहर निकलता है—वैसे ही उसको चाटते जाते हैं। कभी-

कभी तो उन्हे ऐसा स्वाद आता है कि वे राजसी त्वचा में छेद तक कर देते है।

चींटियो की तरह इस प्रकार के बढिया भोजन के लिए दीमकों की इस अनुरक्ति ने अनेक मेहमान कीड़ों को उनका शोषण करने के लिए अग्रसर कर दिया है, जिन्होंने इस प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न कराने का रहस्य भली तरह से समझ लिया है। अनुमानतः दीमकों और चींटियो के मुँह की बनावट में वैभिन्य होने के कारण उनके मेहमानों ने बालों के वैसे स्तन के समान अग्रभाग नहीं परिवर्द्धित कर पाये हैं, जो चींटी-मेहमानों की एक विशेषता है। किन्तु उसके स्थान मे उन्होंने प्राप्त कर लिए है, पतली दीवाल वाले ढाँचे, चाटने योग्य रचनाएँ, फूले हुए पेट या विशेष प्रकार के शारीरिक उभार साथ ही उनमें से बहुतों ने (Physogastry) प्राप्त कर ली है, अर्थात अतिशय पेट फूलने की अवस्था ग्रहण करली है, जो कि प्रौढ दीमक रानी की विशेपता है। साधारणतया यह अवस्था मोटे शरीर के विस्तार से उत्पन्न होती है, किन्तु आँतों या बच्चेदानियों के विस्तार से भी हो सकती है उदर की वृद्धि के साथ साधारणतः सिर, आँखे, वक्षस्थल और पंख घटने लगते हैं। 'स्याइरेक्था' नामक एक मेहमान गुबरोले मे यह विचित्र बात होती है कि वह थोडा बहुत गुबरोले के रूप मे अंडे से बाहर निकलता है और दीमक रानी की तरह पहले तो फूला हुआ उदर प्राप्त करता है और बाद मे उसके शरीर में ऐपी बाहरी वृद्धि उत्पन्न हो जाती है जो चाटने योग्य बन जाती है।

स्वाभाविक रूप से यह मान लिया जायगा कि इस फुलाव का सम्बन्ध सीधे-सीधे अति चरबीले स्वादिष्ट पदार्थों की ...र्ग से होता है और उसके अधिक ऊपरी हिस्से को चाटा जा

सकता है। किन्तु घटना इस प्रकार देखी गई है कि कुछ कीड़े, जो कभी भी चाटे नही जाते बल्कि जिनके प्रति दीमक या तो उदासीन रहते है या उनसे शत्रुता रखते है वे भी (Plyso gastry) अतिशय पेट फुलने की दशा प्राप्त कर लेते है। अतः यह बतलाया गया है कि (Physogastry) कुछ अश मे भोजन के उन पदार्थों के कारण उत्पन्न होती है जो ऐसे आन्तरिक रसों की तरह कार्य करते हैं जिनके द्वारा पाचक ग्रन्थियाँ (hormones) प्रोत्साहित होती हैं। और आगे चल कर परिणाम की वृद्धि और सदुपयोग करने के लिए चयन प्रारम्भ हो जाता है।

दीमकों में गुलाम बनाने वाले या श्रमिक-हीन परजीवियों के कोई भी उदाहरण अब तक ज्ञात नहीं हुए हैं। वास्तविक घटना यह है कि जो सामाजिक कीडे बहुधा दीमकों के घोंसलों के भीतर या उनके उपनिवेशों के आस-पास रहते हैं और उनकी छत्र-छाया, सुरक्षा और एकत्रित किये हुए भोजन से लाभ उठाते है, वे चींटियाँ है। दीमको की कुछ थोडी सी जातियाँ चोर होती हैं, और कुछ 'माइक्रोटरमीस' कुकुरमुत्ता की भी चोरी करते है तथा 'ओडयेटरमीस' नामक शाक-भाजी की खेती करने वाले दीमकों की तैयार की हुई 'मिट्टी' भी उडा लाते है और इस लूट के माल से स्वयं अपने बगीचे लगाते है।

चींटियों के घोसलों की अपेक्षा दीमकों के घोंसले अधिक रोचक होते हैं। यह बात स्वाभाविक भी है, क्योंकि दीमक प्रकाश और हवा को इतना भी सहन नहीं कर सकते कि यदि वे धरती के भीतर बिलकुल ही न रहे तो उन्हे कुछ न कुछ अधिक ठोस और स्थायी वस्तुओं की आवश्यकता हो। एक दृष्टि से देखा जाय तो हमारा कथन सत्य है कि यदि हम दीमक उपनिवेश को एक

व्यक्ति समझते हैं, तो उच्चकोटि के दीमकों के घोंसलों की तुलना दानव केकड़ों, या कछुओं, अथवा अन्य किसी वृहताकार ख़ूँख्वार कीड़े (Dinosaur) की मोटी कवच पत्तर से, या किसी सीप या संख के खोल वाले दुर्ग से की जा सकती है। कवच-पत्तर कुछ समय के लिए कितना ही सफल उपकरण क्यों न हो, किन्तु विकास की लम्बी दौड मे वह पशुओं को एक अंधी गली मे ढकेल देता है। किसी वृहताकार ख़ूँख्वार कीडे का कवच जितना ही अधिक कार्य साधक होगा उतना ही कम शत्रुओं से बचने के लिए उसमें चालाकी, तेजी, मस्तिष्क और इन्द्रिय-तीव्रता होगी, दीमकों का उपनिवेश जितना ही बडा और दृढ निर्मित होगा, उतनी ही कम तत्परता से उसके निवासी अपना घर बदल सकेंगे, और उतना ही कम उन्हे बाध्य होना पड़ेगा कि वे प्राकृतिक शक्तियों के स्वास्थ्य-प्रद आदान-प्रदान मे पड़ें। इस प्रकार अन्त मे दीमक प्रेतों की एक नसल बन गये हैं, जो चीटियों और मधु-मक्खियों की अपेक्षा मुख्य जीवन-प्रवाह से बहुत दूर रहते है, हाँ वे अपने सीमित अधकार के भीतर महान बने हुए है, किन्तु एक अर्थ मे वृहत् जगत मे विदेशी हैं।

निम्नकोटि के दीमक साधारणतया चींटियो से भिन्न अपने घोसले नही बनाते। वे धरती के भीतर या सड़न-गलने वाली लकडी के कुन्दों या ठूँठों मे अपनी सरंगे दौड़ा देते है। इसके विपरीत उच्चकोटि के दीमक ऐसे घोसले बनाते है जिन्हे निविष्ट घोसले कहते हैं इनमे बाकी आस-पास की वस्तुओं से अलग दिखलाई देने वाले निश्चित भवन बने रहते है) कदाचित् सबसे अधिक चकित करने वाले अफरीका के मैदानो के दैत्याकार मिट्टी क दीमक-गृह होते हैं जो क्रमशः उन छोटे से प्रारम्भिक

भू-गर्भ वाले कमरों के ऊपर बनाए जाते हैं जिन्हे राजसी संस्थापकों ने खोद कर तैयार किया था। इनकी ऊँचाई बीस फीट या इससे भी अधिक तक पहुँच सकती है और इनकी बनावट इतनी दृढ होती है कि पहाड फोड़ने वाली तेज़ बारूद से कम ताक़त वाली किसी चीज से वे टूट ही नहीं सकते। इनसे बहुत-कुछ मिलते-जुलते घोंसले आस्ट्रेलिया मे भी पाये जाते हैं। इस महाद्वीप के अत्यन्त उष्ण भाग मे कुछ जातियाँ लम्बे, पतले और खूँटे के आकार के घर बनाती है। इन घरों को कुतुबनुमा-घोंसले कहा जाता है क्योंकि सदा इनकी पंक्ति उत्तर और दक्षिण की ओर बनती है; यह प्रबन्ध निश्चय ही अत्यन्त उष्णता की व्यवस्था के अनुकूल ही होता है, क्योंकि इस रीति से मध्यान काल के सूर्य के सामने घर का थोडा ही हिस्सा आता है। अफ्रीका मे विचित्र डंठल वाले घोंसले मिलते हैं, जिन पर कुकुरमुत्तों की छत छाई रहती है जो प्रत्यक्षतः किसी भी अवस्था में धूप और वर्षा दोनों से रक्षा का काम देती है। इसी महाद्वीप के बरसाती जङ्गलों मे दूसरे प्रकार के घोंसले कुछ ऐसे उभरे हुए से मिलते है, जो पेड़ों के धड़ों से निकले हुए मांस के गुच्छों के सदृश्य होते हैं और मेह से बचने के लिए उनके ऊपर इस आकार की एक कतार की कतार लकड़ी के गूदे से चिपकी हुई पेड़ के धड पर बनी रहती हैं। धरती वाले घोंसले साधारणतया मिट्टी के बने हुए होते हैं किन्तु पेड़ों वाले घोंसलों का पदार्थ प्रायः कागज के समान एक पिण्ड होता है जो चबाई हुई और अद्धपाचित लकड़ी का मुँह की लार से चिपकाने से तैयार किया जाता है। साधारणतः वे गोल या अण्डाकार होते हैं और एक अच्छे बड़े पीपे के आकार तक पहुँच सकते हैं। चीटियों के घोंसलों के बिल्कुल असमान दीमकों के घरों मे

कोई भी प्रवेश मार्ग दिखाई नहीं देता। इसका कारण उन घोसलों के निवासियों की प्रकाश से दूर भागने की प्रवृत्ति ही है। दीमक या तो आस-पास की जमीन, या लकडी को खोद कर बिल मे घुसते है, या अनेक उच्च आकृतियाँ जो यद्यपि पृथ्वी तल पर चलती है, आगे बढती हुई अपने राजपथ के ऊपर सुरगे बनाती जाती हैं। सुरगे बीसों गज लम्बी हो सकती हैं और उनकी सहायता से औपनिवेशिक संगठन अपनी स्पर्श भुजाएँ (tentaoles) प्रत्येक ओर फैला देता है। जब दीमकों का एक बडा उपनिवेश इस ढग से किसी घर मे घुस जाता है, तो उसके द्वारा की हुई लूट बहुत समय तक छिपी रहती है, क्योंकि श्रमिक लकडी के प्रत्येक प्राप्त पदार्थ के भीतरी भाग को खाने मे लगे रहेंगे। अन्त मे वे दीवालों, फर्श के तख्तों, और कुर्सियों को खोखला कर देंगे और घर के स्वामी को उनकी इस कार्यवाही का पता उस समय चलता है।जब उसका लकडी का सामान या घर एक दम से ढह जाता है।

इन आदतों के कारण चीटियों की अपेक्षा दीमक अधिक नाशकारी होते है। वे केवल घरो की लकडी के सामान ही को गुपचुप नहीं खा जाते बल्कि कटहरे, रेल के स्लीपर, तार के खम्भे, नावे, पडाव की सीढियाँ और पुल आदि सभी कुछ उनकी चक्की मे पिस जाते है। वे केवल स्थूल सभ्यता के प्रचार ही को पाछे नहीं घसीटते, किन्तु कागज भी तो मुख्यतः कचकडे ही से बनता है और छापेखाने की स्याही भी दुर्भाग्य से उसे दीमकों के लिए वेस्वाद नही बनाती इस प्रकार उनके कुछ गम्भीर उपद्रव लेख्य प्रमाणों (documents) और पुस्तकों पर होते हैं। 'फान हम्बोल्ट' महाशय लिखते हैं कि जब वह दक्षिण अमेरिका के अधिक तप्त भाग मे थे तो उन्होंने पचास वर्ष से

ज्यादा पुरानी कोई पुस्तक मुश्किल ही से देखी थी, शेष दीमकों का भोजन बन गई थीं। इसलिए यह कहा गया है और इसमें पर्याप्त तथ्य भी है कि उष्ण देशों की सभ्यता की उन्नति की धीमी गति का यह एक कारण है। (यद्यपि निस्सन्देह यह एक मात्र कारण नहीं है) यह बात निश्चित है कि उष्ण देश का कोई राष्ट्र जो फलने-फूलने वाली और स्थायी सभ्यता चाहता है, उसे अपनी इमारतों की नीवें दीमक-रक्षित बनाना पड़ेगी, जैसा कुछ लोगों ने बनाना प्रारम्भ कर दिया है। उन्हें अपनी उन इमारतों की ओर विशेष ध्यान देना होगा जिनमें उन्हें अपने पुस्तकालय रखने हैं या जिन्हें ग्रन्थ-रक्षा-गृह बनाना है या कोई ऐसी रचना निर्माण करनी है जिसे तनिक भी स्थायित्व देने की आवश्यकता है।

दीमकों के कीर्ति-पक्ष में यह बात अवश्य लिखनी होगी कि चींटियों के बिलकुल विपरीत वे खेतों के लिए केवल अघातक ही नहीं है किन्तु वास्तव में लाभदायक भी हैं। समशीतोष्ण प्रदेशों में, जैसा कि डारविन ने बतलाया है, भूमिज कीड़े, जैसे केंचुए आदि, पौधों के लिए भूमि तैयार करने और मिट्टी को उलटन-पलटने में एक बड़े महत्व का काम करते हैं। उष्ण प्रदेशों में इसी प्रकार का काम दीमक करते हैं, और कदाचित् बड़े परिणाम में, किन्तु निश्चय रूप से बड़ी तेजी के साथ। कचकड़ा और लकड़ी ऐसे विरोधक पदार्थों का शीघ्रता से भेदन करने के लिए, उनकी सुरंग बनाने की क्रियाएँ यांत्रिक रूप से उनके आद्य (protozoa) पाचन की रासायनिक सहायता करती हैं। और इस ढंग से वे जीवन की उस बड़ी सम्पत्ति को शीघ्रता पूर्वक परिभ्रमण में ले आते हैं, जो ऐसा न होने पर, वर्षों एक सन्दूक में रासायनिक रूप से अप्राप्य होकर बन्द पड़ी रहती।

वह बात भी विचित्र है कि कुकुरमुत्ते की खेती दीमकों में भी वैसी ही पैदा हो गई है जैसे कि वह चींटियों में हुई है—यह घटना स्वतन्त्र विकास का एक बडा अच्छा उदाहरण है जिसे वे अधिक उग्र विस्तारक (diffusivnists) भली प्रकार अपने मन मे समझ लें, जो प्रमाणिक ढग से यह कहते है कि मानव ज्ञानोन्नति (Culture) मे कोई बात एक से अधिक वार नहीं उत्पन्न हुई है। चींटियों की अपेक्षा दीमकों के कुकुरमुत्ते के बाग आकार और पूर्णता मे बडे भी हो सकते है। जिन घोंसलों मे ये बाग होते है उनमे कभी-कभी चिमनियाँ-सी भी बनी हुई पाई जाती है जो कदाचित् हवा देने की छडे होती है और गर्मी-सर्दी को नियमित रखने के सहायतार्थ बनाई जाती हैं। कम-से-कम इतना तो देखा गया है कि घोसले का दैनिक तापमान ९ डिगरी सेन्टीमीटर रहा है जब कि बाहर का २० डिगरी से ऊपर था। श्रमिक और सैनिक कचकडे वाला ठोस भोजन ही खाते है और कुकुरमुत्ते को जनकों और बच्चों के लिए छोड़ देते हैं। बच्चे बगीचों को चरागाहों और जखीरो के सयुक्त रूप मे प्रयोग करते है और चरते समय एक बडा सुन्दर दृश्य उपस्थित करते है—वे श्वेत वनस्पति समुदाय से भिडे हुए सफेद नन्हे-नन्हें मेमने से दिखलाई देते है।

कवच से सुसज्जित दीमक उपनिवेशो के संबंध मे चींटियों की अपेक्षा अधिक विश्वास और दृढता के साथ यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि वे अपने विकास के बन्धन सूत्र के सिरे पर पहुँच गये है और सामूहिक रूप से बिना किसी आवश्यक परिवर्तन के और बिना वास्तविक प्रगति के प्रस्तुत और प्रचलित रहेगे। इस समूह के एक अधिकार प्राप्त विशेषज्ञ 'होमग्रेन' (Holmgren) महाशय ने कहा है कि उनके विकास के साथ—

साथ ये तीन बातें चलती हैं। पहली यह कि उनके समाजों में वह विशेषता आ जाती है जिसका वर्णन हो चुका है, दूसरी यह कि उनके मस्तिष्कों का विस्तार हो जाता है और तीसरी यह कि उनके शारीरिक पिण्डों की अवनति हो जाती है। ऐसी ही भविष्यवाणियाँ मानव जाति के भाग्य के विषय में भी बहुधा की गई हैं। अब यह देखना बाकी रह जाता है कि क्या मनुष्य विवेचन और दूर दर्शिता के समतल पर कुछ कुछ रहने के कारण इस योग्य हो जायेगा कि वह क्रीडा, शारीरिक व्यायाम और सुन्दर-सन्तति-उत्पादन-शास्त्र, (Eugenics) के द्वारा इस खतरे पर विजय प्राप्त कर ले।

—o—

ग्यारहवाँ अध्याय

कीड़े-मकोड़े और मनुष्य

चींटियों और दीमकों की हमारी संक्षिप्त आलोचना अब समाप्त हुई। अतः अब हम इस अवस्था में हैं कि उन भ्रमों की जाँच करें जिनमें सामाजिक कीड़ों पर लिखने वाले अनेक लेखक पड़ गए हैं। कुछ ने भारी अति-सरलता की भूल की है, उदाहरणार्थ 'बेथे' महाशय ने कहा है कि चीटियाँ और मधु-मक्खियाँ केवल यान्त्रिक प्रतिक्रिया हैं, जो अनुभव से लाभ उठाने के अयोग्य हैं या उस प्रकार अपने घोंसलों का स्थान जानने में असमर्थ हैं जिस प्रकार हम अपने जाने हुए स्थानों को पहचान लेते हैं। दूसरे लोगों का यह कहना है कि उन्हें रंग का ज्ञान बिल्कुल नहीं होता। यदि यह बात सत्य होती तो फूलों [illegible] के रंग का कोई जीव विज्ञान-सम्बन्धी अर्थ ही न रहता।

किन्तु लोगों का बहुमत एक अधिक प्रचलित और अधिक छली दृष्टिकोण ग्रहण करता है। वे या तो कीडे-मकाड़ों को सूक्ष्म रूप का मानव प्राणी समझने लगते हैं अन्यथा उनमें जादूगरी के गुणों का समावेश कर देते है। स्वय 'बेथे' महाशय ने वाध्य होकर मधु-मक्खियो म दिशाज्ञान की एक ऐसी रहस्यमय प्रेरणा का वर्णन किया है, जो किसी भी साधारण इन्द्रिय-मार्ग से कार्यान्वित नही होती, और 'फेवर' महाशय के समान लेखकों का उनकी स्वयभू-प्रवृत्ति मे ऐसी शक्तियों का निरूपण करना अलौकिक चमत्कार को सीमा मे प्रवेश कर जायगा, यदि सचमुच ऐसी शक्तियाँ उनमे हों। इसके विपरीत 'मेटरलिक' महाशय के समान अविशेषज्ञ लेखक अपनी पुस्तक "मधु-मक्खी का जीवन" मे और इससे भी अधिक अपनी दूसरी पुस्तक "सफेद चींटी" मे कीडे-मकोडो की सारी करतूतों को उनकी बुद्धि से सम्बन्धित करते है और उनकी तथा मनुष्य की मानसिक शक्तियो की ईर्ष्यापूर्ण तुलना करते है। सचमुच मालूम ऐसा देता है कि ऐसे लेखकों ने कभी "डारविन" का नाम नहीं सुना है या कम से कम उसकी पुस्तकों का अध्ययन नहीं किया है अथवा प्राकृतिक चयन का क्या अर्थ है इसका आधुनिक साराश भी नहीं पढा है। वे साधारण शरीर-शास्त्र से अनभिज्ञ हैं और उस अत्यन्त पेचीलेपन की सीमा से अनजान है जिस तक हमारा यान्त्रिक और अचेतन व्यवहार पहुँच सकता है।

उदाहरणार्थ 'मेटरलिक' महाशय कहते हैं कि हमारी अपेक्षा दीमक अधिक बुद्धिमान होते है क्योंकि उन्होने यह मालूम कर लिया है कि लकडी कैसे पचाई जाती है, ठोस पदार्थों (Concrete) को कैसे पिघलाया जाता है और वे अपनी इच्छानुसार अपने नागरिकों की शारीरिक आकृति को ढाल सकते

हैं, उन्हे बजर बना सकते है, उन्हे जन्म जात सैनिक बना सकते हैं, या उन्हे निरे अण्डे देने वाला यंत्र बना सकते है।' किन्तु दीमक अपनी आँतों में लकड़ी हजम करने वाली आठ्य पाचन शक्ति (Protozoa) रखने से उसी प्रकार नहीं बन सकते जैसे कि कुत्ते किलनियों आदि कीड़ों के धारण करने से नहीं बच पाते। हमारे क्लोमरस (Pancreeatic Juice) में पोषक तत्वों को पचाने वाले खमीर (Ferment typsir) के विचित्र अस्तित्व को मानव बुद्धि का कारण आज तक किसी ने नहीं बताया है और न किसी ने इस तथ्य को कि मनुष्य की आँखे कुशल कैमरा के रूप में बनाई गई है, हमारी बुद्धि से सम्बन्धित किया है। अतः इस बात का किंचित मात्र भी कारण नहीं दिखलाई देता कि हम दीमकों की रासायनिक करतूतों को उनकी बुद्धि का कारण मान लें। दीमकों के सम्बन्ध में यह बात मान लेने का भी प्रत्येक कारण है कि उनकी सारी जातियां वंश-प्रकृति के द्वारा पूर्व निर्धारित होती है। यदि ऐसा है तो उनके राजवंशजों, सैनिकों और श्रमिकों पर उनकी 'बुद्धि' के प्रविकार का होना वैसा ही है जैसा कि मानव समाज की उस 'बुद्धि' को मान लेना है, जिसके द्वारा वह ऐसे लोग उत्पन्न करती है जो सफेद बाल वाले, या काले बाल वाले हैं, अथवा जो कद में लम्बे या नाटे हैं, या जो स्वभावतः खिलाड़ी या बौद्धिक हैं।

चींटियों और मधु-मक्खियों की तरह जहां कहीं भी नपुंसक और रानी के अन्तर भोजनों से निर्धारित होते हैं वहीं इन दोनों भोजनों की दो प्रकार की पद्धतियों के प्रति प्रतिक्रिया की सारी योग्यता वंश-प्रकृति से निर्धारित होती है। और यही हाल उनके श्रमिकों की स्वयंभू-प्रवृत्ति का भी है जिससे प्रेरित होकर वे बच्चों को इन विशेष रीतियों से भोजन कराते हैं—क्योंकि

बिना किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त किये हुए ही वे ऐसा करते रहते है—और बुद्धि से निश्चित करने के लिए केवल एक बात शेष रह जाती है कि उनसे सम्बन्धित कितनी रानियाँ और कितने श्रमिक उत्पन्न किये जायँ। वास्तविक बात यह है कि हमें कुछ पता नहीं कि जातियो का ठीक-ठीक पारस्परिक अनुपात किस प्रकार निश्चित होता है और सम्भव है कि यह अनुपात किसी स्वतः काम करने वाले प्रत्युत्तर के द्वारा पूरा होता है। कुछ भी हो, विभिन्न जातियो का वास्तविक शारीरिक रूप अपनी वर्तमान अवस्था तक प्राकृतिक चयन की क्रिया के द्वारा पहुँचा है। यह रूप उस ढाँचे से बिलकुल भिन्न होता है जिसमें कि मनुष्य अपने घरेलू पशुओं और पौधो को ढाल लेता है, जैसे कि कोई तरंगी आदमी किसी पूर्व निश्चित आदर्श के अनुसार मुर्गे-मुर्गियो (Fowl) की एक नई कृत्रिम नसल तैयार कर लेता है या जैसे कि "सर रेजीनाल्ड बिफेन" विचारपूर्वक एक नये प्रकार का गेहूँ उत्पन्न करने की धुन मे लग गये थे।

अन्त मे एक और भ्रान्ति है जो समय-समय पर सामने आ जाती है। हमसे कहा जाता है कि ज्यों-ज्यों हम अपनी सभ्यता का विस्तार करेंगे, ज्यों-ज्यो हम प्रयोगात्मक विज्ञान की करतूतों पर विश्वास करके उसे यान्त्रिक बना देंगे, ज्यो-ज्यों हम वृत्तियों को अधिकाधिक विशिष्ट करते जायेंगे, त्यों त्यो हम वाध्य होकर एक ऐसी स्थिति की ओर अग्रसर होंगे जिसमे हमारा समाज चींटियों के एक विस्तृत घोसले या एक वृहत् दीमक-गृह के सदृश्य हो जायेगा। भविष्य की यह सूचना, अन्य लोगों के साथ 'डीन इंज' महाशय ने भी दी है, किन्तु इसकी पुष्टि मे लेश मात्र भी प्राणि-शास्त्र सम्बन्धी आधार नहीं है। कुछ तो यह

म देता है कि यह धारणा चेतन या अचेतन Lamarckism

(लेमार्क प्राणि-शास्त्र वेत्ता था जो डार्विन के सिद्धान्तों के विरुद्ध यह कहता था कि जीवों के विकास में एक प्रेरणात्मक शक्ति काम करती है) पर निर्धारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह अनुभव किया जाता है कि यदि हम विशेषता प्राप्त करेंगे तो हमारी सन्तति की रचना और विचारधारा क्रमशः समाज की विभिन्न प्रवीणताओं की नालियों मे स्थिर हो जायगी। इस प्रकार के भय की निस्सारता को वंश-प्रकृति के आधुनिक अध्ययन ने सौभाग्य से प्रमाणित कर दिया है। शेष बात यह है कि उक्त धारणा विकास के मार्ग के सम्बन्ध में एक विशेष सिद्धान्त पर आधारित है। इस सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि जीव-जन्तुओं और पोधों के सारे नमूने और समूह एक शीघ्रगामी विकास सम्बन्धी परिवर्तन काल से होकर गुजरते हैं और आगे चल कर एक स्थायी स्थिति पर पहुँच जाते हैं। प्रथम स्थिति का मुख्य लक्षण जीवाणुओं का अधिक लचीलापन होता है और दूसरी स्थिति से वह स्थिर हो जाता है तथा परिवर्तन का प्रतिबन्धक बन जाता है।

अब पहली बात यह है कि जीवाणुओं के लचीलेपन अथवा उनकी स्थिरता का विचार एक शुद्ध भावित सिद्धान्त (hypothesis) है, जो इस निःसन्देह तथ्य की सम्भव व्याख्या करने के लिए उपस्थिति किया गया है कि अनेक नमूने शीघ्रगामी प्राथमिक विकास के पश्चात् आगे चलकर अपनी प्रगति मे धीमी चाल ग्रहण कर लेते है या रुक कर स्थिर हो जाते हैं। किन्तु इससे यह निष्कर्ष किसी प्रकार भी नहीं निकलता कि उपर्युक्त तथ्य का कारण जीवाणुओं मे उपस्थित रहता है। इसका होना इस बात पर भी निभर हो सकता है कि प्राणी ने ऐसी विशेषता प्राप्त कर ली है कि जीवाणु में वास्तव रूप मे होने वाले

परिवर्तन जीव-विज्ञान सम्बन्धी किसी भी लाभ के न रहे हों और दूसरी बात यह है कि बहुधा विकास मे पहले शीघ्रगामी प्रगति होती है, इसके पश्चात् स्थिरता आ जाती है और अन्त मे पतन हो जाता है, इस तथ्य को मान कर एक सर्वव्यापी नियम बना लेने का कोई भी कारण नहीं है। यह बात तो वैसी ही प्रमाणिक मालूम देती है जैसे कि यह कहना कि राष्ट्रों का बहुधा उत्थान होता है, उनमे स्थाई प्रौढ़ता आती है और अन्त मे उनका पतन होता है, अतः समस्त राष्ट्रों के लिए ऐसा चक्कर आवश्यक है।

विकास के ऐसे भूतकालीन उदाहरणों मे यह सदा सम्भव हो सकता है कि किसी समूह की प्रगति की शिथिलता और अन्तिम पतन या विनाश के सम्बन्ध मे कुछ कारण बतलाये जा सके। भौतिक विशेषता की सीमाएँ पहली बात का कारण बतलाती है और दूसरी बात को समझाने वाली यह घटना है कि कुछ ऐसे नये समूहों का उत्थान हो गया हो जो प्राथमिक अवस्था ही मे पहले वाले समूह की अपेक्षा एक कदम ऊँचे थे, और इस उत्थान की सहायता बहुधा जलवायु परिवर्तन, या भूमि और जल के विभाजन के समान ऐहिक घटनाओ से हुई हो यदि शरीर को बिना ग़ुलाम बनाये हुए तथा उसे एक ख़ास ढङ्ग का अस्त्रों-का सन्दूक बनाए हुए, एक विशेषता प्राप्त करली जा सकती है, और चेतन उपायों की सहायता से तथा परम्परा और सामाजिक संगठन मे उन्नति करके, अथवा आवश्यकता होने पर विचार पूर्वक किए हुए सन्तति-निग्रह से, प्रगति भी की जा सकती है, तो सारी अवस्था बदल जाती है और सारी सीमाएँ चूर-चूर हो जाती हैं। सारे प्राणियों मे एक मनुष्य ही ऐसा है एक अवस्था मे से होकर दूसरी अवस्था मे पूर्ण रूप से

पहुँच गया है। यह बात आश्चर्य की मालूम देती है कि 'डीन इंज' के समान लेखक ने, जिसने अनिवार्य प्रगति के विचार की तीव्र आलोचना की है, वही आलोचना इस विचार की क्यों नहीं की कि प्रगति में अनिवार्य रुकावट भी उपस्थित हो जाती है।

खैर, कुछ भी हो, चींटियां और दीमक अब भी जीव-विज्ञान की उस समतल भूमि पर हैं जिसमें, यद्यपि वैयक्तिक और सामाजिक व्यवहार में मन एक पर्याप्त क्रिया करने लगा है, नसल का विकास अब तक पूर्ण रूप से प्राकृतिक चयन के समान अन्धी और स्वयंभू शक्तियों हो से शामिल होता है। इसके विपरीत मनुष्य एक ऐसे समतल पर पहुँच गया है जहाँ, परम्परा को बदल कर और इन परम्परा पर अथवा नसल के जीवाणुओं पर चेतन उद्देश्य का प्रयोग करके, विकास सम्बन्धी परिवर्तन उत्पन्न किया जा सकता है।

अतः इस बात को मान लेने का कोई कारण नहीं है कि अस्त्रों से सुसज्जित या गैस-निरोधक सैनिकों को जन्म देने के लिये, अथवा ह्वेल मछली के आकार के सम्प्रदायिक माता-पिता उत्पन्न करने के लिये या ऐसे बौद्धिक जीवों का निर्माण करने के लिए जिनके सिर ही सिर हो और शरीर बिलकुल नदारद हो, मनुष्य को वाध्य होकर अपनी दाइयों और श्रमिकों को बाँझ बनाना पडेगा।

इस बात को भी मान लेने का कोई कारण नहीं है कि वह अस्तित्व की एक यांत्रिक और स्थायी दशापर आकर रुक जायेगा, कम से कम, आगे आने वाले लाखों वर्षों मे ऐसा नहीं होगा जब कि उसकी खोज के लिए अनेक वस्तुएँ उपस्थित रहेंगी, स्वाद लेने के लिए नये सुख साधन मौजूद रहेगे और ऐसे नये

परिवर्तन करने के अवसर रहेगे जिनसे समाज और व्यक्तियों का जीवन उन्नत बनाया जा सके। अपनी प्रकृति के गुण के कारण वह जानता है कि वह नवीन सत्य की खोज कर सकता है, कला के नये कामों को जन्म दे सकता है, और स्वयं अपने भाग्य को अपने वश मे कर सकता है। और ठीक यही एक विशेष बात है जिसका पूर्ण आभाव एक महान समझदार चींटी और अत्यन्त विशेषता-प्राप्त दोमक मे होता है और वह उनमें सदा के लिए उपस्थित है।

पारस्परिक सहायता

रूस के आराजकतावादी क्रान्तिकारी प्रिस क्रोपोटकिन ने सात वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद "पारस्परिक सहायता" नामक एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक मे उन्होंने अनेक जीव-जन्तुओं के उदाहरणों से यह सिद्ध किया है कि यदि विकास के लिए एक ओर डार्विन का "जीवन सघर्ष" सिद्धान्त सत्य है तो दूसरी ओर पूर्ण विकास के लिए "पारस्परिक सहायता" का सिद्धान्त भी समस्त जीव-जगत् मे पूर्णतया लागू है। इस पुस्तक के उस अश की कुछ बाते यहाँ पर लिखी जाती है जिसमें चींटियों और मधु-मक्खियों के उदाहरण प्रिन्स क्रोपोटकिन महाशय ने अपने पारस्परिक सहायता के सिद्धान्त को प्रमाणित करने को दिये हैं। वह कहते हैं :—

चींटियो, दीमकों और मधु-मक्खियों के बीच मे पारस्परिक-सहायता को प्रदर्शित करने वाली घटनाओं की जानकारी साधारण पाठकों को भी इतनी अधिक है कि उनका वर्णन करना व्यर्थ-सा ही प्रतीत होता है। खास कर इन घटनाओं को वे लोग भली-भॉति जानते हैं जिन्होंने 'रोमेनेस' 'एल व्युकर' और

'सर जान लवक' श्रादि-आदि की पुस्तकें पढ़ी हैं। अतः मैं अपनी बातों को केवल संकेत मात्र ही से कहूँगा। (जो लोग इस विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहे उन्हे J. T. moggridge की पुस्तक "Harvesting Ants & Trapdoor Spider" और "Sir John Lubbock" लिखित "Ants, Bees & wasps" आदि पढ़नी चाहिए।

यदि हम चींटियों के एक घोंसले को ले लें, तो उससे हमे केवल इतना ही पता नहीं चलेगा कि हर प्रकार का काम—जैसे बच्चों का लालन-पालन, भोजन की खोज, गृह-निर्माण, पौधा-जू aphides (परजीवियों) का भरण-पोषण इत्यादि—स्वेच्छा से पारस्परिक सहायता करने के सिद्धान्त के अनुसार किया जाता है; किन्तु हमे 'फोरल' महाशय की तरह यह भी मानना पड़ेगा कि चींटियों की अनेक जातियों का मुख्य और जीवन का मौलिक कार्य यह होता है कि हर एक चींटी का पहला कर्त्तव्य यह है कि वह जिस भोजन को खा चुकी है और कुछ-कुछ पचा भी चुकी है, उसे अपने सम्प्रदाय की उस प्रत्येक चींटी को बाँट दे, जो उससे याचना करे। दो विभिन्न जातियों की या दो विरोधी घोंसलों की दो चींटियों की जब घटनावश आपस में भेंट हो जाती है, तो वे एक दूसरे का परित्याग करती है। किन्तु एक ही घोंसले की रहने वाली या एक ही उपनिवेश के घोंसलों की दो चींटियाँ भेंट होने पर एक दूसरे के पास पहुँचेगी, अपने मुँह के स्पर्श केशों की गति के द्वारा कुछ विनिमय करेंगी, और यदि उनमे से एक भूखी या प्यासी होगी और दूसरी की गल-स्थली खूब भरी होगी तो पहिली उससे तुरन्त भोजन की याचना करेगी। जिस व्यक्ति से याचना की जाती है वह कभी इन्कार नहीं करता। वह अपने जबड़ों को अलग करती है उचित स्थान ग्रहण

करती है और पारदर्शी तरल पदार्थ का एक बूँद उगल देती है, जिसको भूखी चींटी चाट जाती है। दूसरी चींटियों के लिए भोजन का उगलना चींटियों के जीवन का ऐसा प्रमुख लक्षण है और भूखे साथियों को खिलाने के लिए तथा कीट-डिम्बों का पेट भरने के लिए यह घटना सदा ऐसे घटित होती रहती है कि 'फोरल' महाशय सोचते हैं कि चींटियों की पाचन-नली के दो भिन्न-भिन्न भाग होते हैं, उनमें से एक, पिछला वाला, उसी व्यक्ति के विशेष प्रयोग के लिए होता है, और दूसरा, आगे वाला, मुख्यतया सम्प्रदाय के प्रयोग के लिए होता है। यदि एक चींटी, जिसकी गलनली पूर्ण रूप से भरी हो, इतनी स्वार्थी हो जाती है कि अपने साथी को खिलाने से इन्कार करती है, तो उसके साथ शत्रु का सा, या उससे भी बुरा व्यवहार किया जाता है। यदि ऐसे समय पर इन्कार किया जाता है जब कि उसके भाई बन्धु किसी दूसरी जाति वालों से लडते होते है, तो वे पलट कर, स्वयं शत्रु की अपेक्षा, उस लालची व्यक्ति पर अधिक प्रचंडता से टूट पडती है। और यदि एक चींटी किसी शत्रु जाति की दूसरी चींटी को खिलाने से इन्कार नहीं करती, तो शत्रु जाति वाले उसके साथ एक मित्र का सा व्यवहार करते है। इन सारी बातों की पुष्टि बिल्कुल यथार्थ पर्यवक्षण और निश्चित परीक्षणों द्वारा हो चुकी है। 'ह्यु वर' महाशय ने इस प्रक्रिया का बडा सुन्दर वर्णन किया है और उसमे स्वयभू प्रवृत्ति के सम्भावी उद्गम की ओर भी एक संकेत है। 'ह्यु वर' की सुन्दर पुस्तक मे शीशे के कृत्रिम घोंसले, मे चींटियो के लालन-पालन का और उसके उत्तर-गामी खोजियों के शोध वाले परीक्षणों का वर्णन है। इसमे "लबक" महाशय परीक्षणों का भी जिक्र है। जिन लोगों ने 'फोरल' और

'लबक' की पुस्तके पढी है, उन्हे ज्ञात है कि 'रिवस' अध्यापक और 'ब्रिटिश' लेखक दोनों ही ने अपना कार्य आलोचनात्मक दृष्टि से प्रारम्भ किया था और उनका अभिप्राय 'ह्यबर' के उन निश्चित वाक्यो को अप्रमाणित करने का था, जो उसने चींटियों की पारस्परिक सहायता की सुन्दर स्वयंभू-प्रवृत्तियों के सम्बन्ध मे कहे थे। किन्तु भली प्रकार अनुसन्धान करने के पश्चात् उन्हें उन वाक्यों का समर्थन ही करना पड़ा।

मिस्टर 'सदरलेन्ड' ने अपनी पुस्तक 'नैतिक स्वयभू-प्रवृत्ति की उत्पत्ति और वृद्धि" को प्रत्यक्षत: इस अभिप्राय से प्रारम्भ किया था कि वह प्रमाणित कर दें कि समस्त नैतिक भाव पैत्रिक देख-भाल और पारिवारिक प्रेम से उत्पन्न होते हैं, और ये दोनों ही गुण उष्ण-रक्त जीवधारियो मे पाये जाते है। अतएव वह चींटियो में सहानुभूत और सहकारिता का महत्व का अल्पीकरण करके दिखलाने का प्रयत्न करते है। उन्हे 'बुकनर' की पुस्तक 'जन्तुओं मे मन' और 'लबक' के परीक्षणों का पता था वह 'ह्यबर तथा 'फोरल' की पुस्वको को और 'बुकनर' के चींटियों की सहानुभूति के उदाहरण को भावुकता की बातें कह कर खारिज कर देते हैं।

यहाँ पर स्वीडेन के अध्यापक 'गारफ्रीट एडलज' के चींटियों के सम्बन्ध मे लिखे हुए नवीन ग्रन्थ का भी जिक्र कर देना अनुचित न होगा। यह कहने को आवश्यकता नही कि स्वेडिश अध्यापक ने चींटियों के परस्पर-सहायता के जीवन के सम्बन्ध में 'ह्युबर और 'फोरल की कही हुई सारी बातों का पूर्णतया समर्थन किया है। इन बातों मे भोजन के बँटवारे से सम्बन्ध रखने वाली बात भी सम्मिलित है, जो उन लोगों का बड़ी

अनोखी मालूम देता है जिन्होंने पहले कभी इस विषय पर कोई ध्यान ही नहीं दिया है।

अध्यापक 'जा० एडवर्ज' ने ह्युबर की पूर्व कथित बातों को प्रमाणित करने के हेतु बड़े ही मनोरंजक परीक्षण दिये है, जैसे कि दो विभिन्न घोंसलो की चींटियाँ सदा एक-दूसरे पर आक्रमण नहीं करती। उसने अपने परीक्षणों मे से एक 'टेरानोमा इरेटिकम' नामक चींटी पर किया था और दूसरा मामूली 'रूफा' नामक चींटी पर। एक पूरे घोंसले को उसने एक थैले में भर लिया और ले जाकर एक-दूसरे घोंसले के पास ६ फिट की दूरी पर उड़ेल दिया। कोई लड़ाई नहीं हुई, बल्कि दूसरे घोंसले की चींटियो ने पहली वालियों के इल्ले ले जाना प्रारम्भ कर दिया। आगे जब कभी भी अध्यापक 'एडवर्ज' ने दो विभिन्न घोंसलो के श्रमिकों को उनके इल्लों सहित एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया तब भी लड़ाई नहीं हुई, किन्तु जब श्रमिक बिना इल्लों के मिले, तब लड़ाई होने लगी।

चींटियों के 'राष्ट्र' सम्बन्ध मे, जो कई घोंसलों को सम्मिलित करके बनता है, वह 'फोरल' और 'मैककुक' के कथन की पूर्ति भी करता है। वह अपना अन्दाज लगाकर, जिसके अनुसार 'फोरमिका एक्सेटा' चींटी के प्रत्येक घोंसले मे औसतन ३००००० चींटियाँ होतीं है इस परिणाम पर पहुँचता है कि चींटियों के इस प्रकार क 'राष्ट्र' मे उनकी संख्या करोड़ों और लाखों तक भी पहुँच सकती है।

प्राणि-राज्य के उस वृहत विभाजन में जिसमें एक हजार से अधिक जातियाँ हैं, और जो इतना अनेक-सख्यक है कि ब्रेजिल निवासियों का यह कहना है कि ब्रेजिल चींटियों का है और मनुष्यो का नहीं, एक ही घोंसले के या कई घोंसलों

के किसी उपनिवेश के सदस्यों मे कोई भी प्रतिस्पर्धा नहीं है। विभिन्न जातियों मे कैसे भी भयंकर युद्ध होते हों, और युद्ध-काल मे कैसी भी क्रूरताएँ होती हों, किन्तु सम्प्रदाय के भीतर पारस्परिक सहायता स्वभाव का रूप धारण करने वाली आत्म-भक्ति और सार्वजनिक भलाई के, बहुधा आत्म-बलिदान के, नियम बन गए है। चींटियो और दीमकों ने 'हाब द्वारा वर्णित युद्ध' का परित्याग कर दिया है, और इससे उनका भला ही हुआ है। उनकी पारस्परिक सहायता का स्वाभाविक परिणाम है उनके आश्चर्यजनक घोंसले, उनकी इमारते, जो आपेक्षिक आकार मे मनुष्यों की इमारतो से उत्तम है, उनकी पक्की सड़कें, धरती के ऊपर मेहराबदार बरामदे, उनके लम्बे-चौड़े दालान और अन्नागार, उनके अनाज के खेत, अनाज की फसल का काटना और अन्न से 'मदिरा' तैयार करना।* अण्डों और कीट-डिम्बों का युक्त-सिद्ध ढंग से देख-भाल करना और पौधा-जुओं के लिए विशेष घोंसले बनाना, जिन्हें 'लीनियस' ने रोचक ढंग से 'चींटियो की गाय' कहा है, और अन्त मे उनका साहस, वीरता और उच्चकोटि की बुद्धि। इस पारस्परिक सहायता को वे अपने उद्योगी और उद्यमी जीवन की प्रत्येक अवस्था में व्यवहार मे लाती है। जीवन की उक्त विधि का अनिवार्य परिणाम वह क्रम-वृद्धि हुई जो चींटी-जीवन का एक दूसरा आवश्यक लक्षण है। इससे प्रारम्भिक संस्कार करने की वैयक्तिक-

---

*चींटियों की खेती इतनी विचित्र होती है कि बहुत दिनों तक लोग इसके विषय में सन्देह करते रहे। किन्तु इस तथ्य को मिस्टर मोरिज, डा० लिस्कम, मिस्टर मेक्कुक कर्नल साइक और डा० जडन ने इतनी अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है कि सशय की कोई सम्भावना ही नहीं रही है।

प्रेरणा-मूलक शक्ति का अमित परिवर्द्धन होता है और स्वयं उच्चकोटि की और भिन्न प्रकार की बुद्धि की क्रमवृद्धि की ओर अप्रत्यक्ष रूप से ले जाता है, जिसको देखकर मनुष्य का ध्यान आकर्षित हुए बिना रही नहीं सकता।*

चींटियो और दीमकों के सम्बन्ध मे जो कुछ हम जानते है यदि इसके अतिरिक्त हम जन्तु-जीवन के सम्बन्ध मे और कुछ न जानते होते तो भी हम निःसंकोच इस परिणाम पर पहुँचते कि पारस्परिक सहायता (जो पारस्परिक विश्वास की ओर ले जाती है और यह साहस की पहली शर्त है) और वैयक्तिक-प्रेरणा-मूलक (या प्रारम्भिक संस्कार करने की) शक्ति (जो बौद्धिक प्रगति की पहली शर्त है) दो ऐसे उपकरण हैं जो प्राणि-राज्य के विकास मे पारस्परिक संग्राम की अपेक्षा अधिक असीम महत्व के हैं। सचमुच चींटी बिना 'रक्षक' लक्षणों के भी उन्नति करती है, किन्तु जो जीव एकाकी जीवन व्यतीत करते है उनकी गुजर बिना इन लक्षणों के हो ही नहीं सकती। उसका रंग उसको उसके शत्रुओं के लिए स्पष्ट बना देता है, और बहुत-सी जातियो के ऊँचे-ऊँचे घोंसले चरागाहों और जंगलों मे प्रत्यक्ष दिखलाई देते है। वह कछुए की कड़ी पीठ की तरह किसी सख्त चीज से

---

* यह दूसरा सिद्धान्त तुरन्त स्वीकार नहीं किया गया था। पहिले के निरीक्षकों ने बहुधा राजाओं, रानियों और मैनेजरो आदि का जिक्र किया है, किन्तु जब से 'ह्यूबर' और 'फोरल' ने अपने सूक्ष्म निरीक्षणों को प्रकाशित किया है तब से इस बात मे संशय की कोई सम्भावना नहीं रही है कि चींटियाँ जो कुछ करती हैं, और इसमे उनके युद्ध भी शामिल हैं, उसमे प्रत्येक व्यक्ति के प्रारम्भिक संस्कार करने की प्रेरणा-मूलक शक्ति को स्वतंत्र अवसर रहता है।

सुरक्षित भी नहीं रहती, और उसका डंक वाला औजार, यद्यपि वह उस समय चाहे जितना भयंकर हो जब कि सैकड़ों डंक किसी पशु के मांस मे घुसेड़ दिये जायें, वैयक्तिक रक्षा के लिए कोई बड़ा मूल्य नहीं रखता, और चींटियों के अण्डे तथा कीट-डिम्ब जंगल के अनेकानेक निवासियों के लिये एक सुस्वाद भोजन होते हैं। तो भी चींटियाँ, हज़ारों की संख्या मे न तो पक्षियों के द्वारा नष्ट की जाती हैं और न चीटोखोरों के द्वारा बल्कि बड़े-बड़े और अधिक बलवान कीड-मकोड़े उनसे डरते हैं। जिस समय फोरल ने चींटियो से भरा हुआ एक थैला एक चरागाह मे उडेल दिया, तो उसने देखा कि 'चींटियों को लूट कर अवसर देने के लिए अपने बिलों को छोड़ कर सारे झींगुर भाग खड़े हुए, आँखफोडवे और झींगुर सब ओर भागने लगे, मकड़ियों और गुबरीलों ने अपने शिकार छोड़ दिये ताकि स्वयं शिकार न बन जायें। एक ऐसे युद्ध के पश्चात् जिसमे सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा के लिए अनेक चींटियों का नाश हो गया था, उन्होंने बर्रों के छत्तों को भी ले लिया।' शीघ्रतम-गामी कीड़े भी उनसे नहीं बच सकते, और 'फ़ारल' ने देखा है कि तितलियों, डांसों, मच्छरों और मक्खियो इत्यादि पर चींटियाँ अकस्मात् आक्रमण कर देती हैं और उन्हे मार डालती हैं। उनकी शक्ति उनकी पारस्परिक सहायता और पारस्परिक विश्वास मे होती है। यदि चींटी—दीमकों को छोड़ कर, क्योंकि वे तो उच्चतर रूप से परिवर्द्धित हो चुके हैं—कीड़ों की सारी श्रेणी मे बौद्धिक योग्यता की दृष्टि से चोटी तक पहुंच गई हैं, यदि उनके साहस की बराबरी केवल अत्यन्त साहसी मेरुदण्डी प्राणी ही कर सकते हैं; और यदि उसका मस्तिष्क डार्विन के शब्दों मे सांसारिक पदार्थों के महान आश्चर्यजनक अणुओं मे से एक है, कदाचित्

मानव मस्तिष्क से भी कुछ अधिक विचित्र हैं, तो क्या यह बात इस तथ्य के कारण नहीं है कि चींटियों के सम्प्रदायों में पारस्परिक संग्राम का स्थान पारस्परिक सहायता ने पूर्ण रूप से ले लिया है ?

यही बात 'मधु मक्खियों के सम्बन्ध मे भी सत्य है ? और वह मेरी 'मधु-मक्खी' नामक पुस्तक मे देखी जा सकती है।

जन्तु-जगत के विकाश की प्रत्येक अवस्था मे हम पारस्परिक सहयोग तथा सम्मिलन की कुछ न कुछ मात्रा पाते हैं। ज्यों-ज्यों हम विकास की सीढी पर ऊपर चढते जाते हैं त्यों त्यों प्राणि-जगत मे यह सम्मिलन केवल स्वयम्भू प्रवृत्तियों पर अवलम्बित न रह कर विवेक पर निर्भर होता जाता है। अतः वह चींटियो और मधु मक्खियो की तरह उनकी शारीरिक रचना के कारण ऊपर से नही लाद दिया जाता, बल्कि पारस्परिक सहायता के लाभ के लिये अथवा केवल सुख की दृष्टि से उत्पन्न किया जाता है।